CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वेद

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

१७८

वे. अा

६५

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

१) हरिश्चन्द्रोपाख्यान, ऋग्वेदभाष्यभूमिका. ऐतिह्य

२) महीधर भाष्य १९.२५ ✓

३) उव्वट भाष्य २८.३२ ✓

४) मीमांसान्याय प्रकाश

५) अनुसन्धान पद्धतिः

६) कालीदासाला भूमिका

७) निरुक्त

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

THE

VIDYABHAWAN SANSKRIT GRANTHAMALA

99

*****

THE

HARIŚCANDROPĀKHYĀNA

(THE STORY OF ŚUNAḤŚEPA)

OF

THE AITAREYA BRĀHMAṆA

Edited With The

Sāyaṇa's Comm., Translation, Exhaustive Introduction etc.,

BY

Prof. Uma Shankar Sharma 'Rishi'

Post-Graduate Deptt. of Sanskrit

Patna University

PATNA

THE

CHOWKHAMBA VIDYABHAWA[N]

VARAN[ASI]

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

294.5921
SHA

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

आत्मनिवेदन

विपद्घनध्वान्तसहस्रभानवः समीहितार्थार्पणकामधेनवः ।
अपारसंसारसमुद्रसेतवः पुनन्तु भूदेवपदाब्जरेणवः ॥

आज पाठकों के करकमलों में वैदिक-साहित्य की एक छोटी पुस्तिका रखते हुए परम हर्ष का अनुभव कर रहा हूँ। जिस सहृदयता से 'हिन्दी-निरुक्त' तथा 'वैदिकी प्रक्रिया' का स्वागत किया गया है, उसी कृपालुता की आशा हरिश्चन्द्रोपाख्यान भी रखता है। विश्वासपूर्वक यह कहा जा सकता है कि पिछले ग्रन्थों की अपेक्षा यह अच्छा बन पड़ा है। इसका कारण है। छोटी अवस्था में लेखनी उठाने पर वह सदा विकसित होती रहती है यदि लेखक में आगे बढ़ने की कुछ भी चाह हो। अभी भी विश्वास है कि आगे की पुस्तकें क्रमशः अच्छी होती जायँगी जब तक कि प्रौढि प्राप्त न हो जाय।

'विवेकभ्रष्टानां भवति विनिपातः शतमुखः' (भर्तृहरि)। यही मेरे साथ हुआ। राँची विश्वविद्यालय की अस्थायी सेवा में मुँह की खानी पड़ी, सिल्ली ट्यूटोरियल कालेज (राँची) में प्रिंसिपल का पद मिला तथा दिन में हायर सेकंडरी स्कूल में भी काम करता रहा। यह समय मेरे जीवन की अविस्मरणीय घटना है—गन्दी राजनीति के विषभरे वातावरण में साँस लेनी पड़ी, मैं भी बच न सका—'काजल की कोठरी में कैसो हू सयानो जाय, काजल की एक लीक लागिहै पै लागिहै।' दिन भर स्कूल, रात में कॉलेज, छुट्टियों में पहाड़ घूमना—यही दिनचर्या थी। लिखना-पढ़ना तो छूटा ही था, बुद्धि का और ज्ञान का भी ह्रास हो चला, आदरणीय डा० कामिल बुल्के ने इसका संकेत किया था पर लाचारी थी।

ईश्वर की कृपा ! अकस्मात् भाग्य ने पलटा खाया और पटना विश्वविद्यालय में पुनः प्रतिष्ठित हुआ। कौन जाने अभी कितने धक्के और खाने

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

हैं। परन्तु इन सबों के होते हुए भी लेखनी शान्त होना चाहती नहीं। मन पर चोट लगती है सही, पर अब मैं धृष्ट हो गया हूँ।

अस्तु, पटना आने पर स्नातकोत्तर कक्षाओं में अन्य ग्रन्थों के साथ मुझे हरिश्चन्द्रोपाख्यान पढ़ाने का भी आदेश आचार्य श्रीचन्द्रकान्तपाण्डेयजी (अध्यक्ष) ने दिया। आवश्यकता आविष्कार की जननी है। विद्यार्थियों की आवश्यकता मुझे खली। प्रकृत पुस्तक से अनुवाद और आलोचनात्मक प्रश्न आते हैं, उसके लिए विद्यार्थी बेचारों की दौड़-धूप देखते ही बनती है। पूज्य पं० महादेव शास्त्री जी की पाण्डित्यपूर्ण सायणानुकूल व्याख्या और सरलार्थ से विश्वविद्यालय के छात्रों को सन्तोष नहीं। डा० कीथ का विशाल ग्रन्थ इतना गुरु है कि आजकल के निर्धन और अजीर्ण-रोग से ग्रस्त छात्रों की बुरी दशा हो जाती है।

इन सब भावनाओं से प्रेरित होकर अपने प्रकाशक को बिना बतलाये ही मैंने इसका लेखन आरंभ किया। कार्यबाहुल्य से आज इसे समाप्त कर सका हूँ। भूमिका में अधिकांश भाग डा० कीथ के विचारों के सरलीकरण में लगाया गया है जिससे हमारे प्राचीन पंडित भी पाश्चात्त्य विद्वानों के विचारों से अवगत हो सकें और उस प्रणाली की समीक्षा कर सकें। मेरा यह अभिप्राय कदापि नहीं कि मैं आँख मूँद कर उन पाश्चात्त्यों की बात स्वीकार करता हूँ पर तर्क का कायल अवश्य हूँ।

भूमिका में शैली बदलती गई है। इसका कारण लेखक की विभिन्न परिस्थितियाँ और मनोदशायें रही हैं। अपनी चतुर्वर्षीया पुत्री की विषम रुग्णावस्था और मृत्यु के उपरान्त अपने मन को समझाने की मैंने बड़ी चेष्टा की है—कृत्रिम निबंधात्मक शैली अपनाई (परि० ६), हड़बड़ा कर समाप्त कर दिया। जीवन का प्रभाव साहित्य पर पड़ना आवश्यक ही है। इसे कोई बचा नहीं सकता।

पहले विचार था कि संस्कृत में स्वतंत्र व्याख्या लिखी जाय पर सायण की प्रसन्न व्याख्या ने मुझे मुग्ध कर लिया, अतः यथासाध्य टिप्पणियाँ ही जोड़ दी हैं जिनसे भाषाशास्त्रीय पक्ष पर प्रकाश पड़ता है! वास्तव में भारतयूरोपीय

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

भाषा के प्रकाश में हरिश्चन्द्रोपाख्यान की समीक्षा करने का मेरा प्रयास सर्वत्र ही रहा है। अपने छात्रों को पढ़ाने के समय जो सामग्रियाँ मैंने दी हैं उनसे यदि इसमें न्यूनाधिक बातें मिलें तो कोई आश्चर्य की बात नहीं। भूमिका में प्रायः सभी पक्षों पर विचार करने की चेष्टा की है, फिर भी यदि कृपालु विद्वान् मुझे अपने सत्परामर्श दें तो परम उपकार मानूँगा।

अध्ययन और प्रेसकापी तैयार करने के लिए पुस्तकें खोजने में मुझे जितनी कठिनाइयाँ हुई हैं शायद जीवन भर न भूलूँगा। पटना विश्वविद्यालय के और पटना कालेज के भूतपूर्व विद्यार्थियों का भला हो जिन्होंने सायण-भाष्य समेत ऐतरेय ब्राह्मण की प्रतियों से (जो पुस्तकालय की संपत्ति हैं) हरिश्चन्द्रोपाख्यान ही फाड़कर उड़ा दिया है। मैं तो निराश हो गया था कि सायणभाष्य नहीं पा सकूँगा। पर एक प्रति मुझे साबित मिल सकी। यही दशा हॉग और कीथ की पुस्तकों की है, पन्ने-पन्ने पृथक्, मानो व्यासपत्ने हों और अपने अमूल्य नोटों से रँगे हुए। यह दशा है भारतीय विद्यार्थियों की!

अपने आदरणीय गुरुवर प्रो० सत्यदेवविद्यावाचस्पति, एम्० ए०, बी० एल्, साहित्याचार्य (अध्यक्ष, संस्कृत विभाग, पटना कालेज) का मैं पूरा कृतज्ञ हूँ जिन्होंने एक बार पाण्डुलिपि का विहंगमावलोकन किया है तथा मेरे कार्य में आशीर्वचन दिये हैं। अपने स्नातकोत्तर कक्षा के छात्रों में सर्व-श्री हरिशङ्कर मिश्र, शिवकुमार मिश्र, श्री भगवान् चतुर्वेदी, हृषीकेश ओझा तथा पारसनाथ मिश्र का मैं उनकी विविध सहायताओं के लिए आभारी हूँ। हर्ष का विषय है कि प्रकाशन के प्रति अब मेरे सहयोगियों में भी रुचि जाग्रत हो रही है।

प्रकाशक बन्धुओं की कृपा का क्या पूछना! युद्ध के कारण उत्पन्न इस महार्घता के युग में भी समूचे संसार को संस्कृतमय करने की प्रतिज्ञा-सी किये हुए हैं। आप लोगों के जैसा सौहार्द प्राप्त करना दुर्लभ है।

इति शम्।

कमता, हिलसा (पटना)
होलोत्सव, २०१६

—उमाशंकरशर्मा 'ऋषि'

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

विषयसूची

१ आत्म-निवेदन — क–ग

२ विषयसूची — १

३ भूमिका — १–५६

[ब्राह्मण ग्रंथ और उनका महत्त्व—ऐतरेय ब्राह्मण और उसकी रचना—प्रक्षिप्तांश—ऐतरेय ब्राह्मण का समय—विभिन्न तर्क—ऐतरेय कर्मकाण्ड—भाषा और शैली—मंत्रों की भाषा—गद्य की भाषा—हरिश्चन्द्रोपाख्यान—नरमेध—शुनःशेपोपाख्यान की उत्पत्ति और विकास—महत्त्व ।]

४ हरिश्चन्द्रोपाख्यान [मूल, अनुवाद, सायणभाष्य, टिप्पणी सहित] — १–५५

प्रथम खण्ड — १

द्वितीय खण्ड — १४

तृतीय खण्ड — १९

चतुर्थ खण्ड — २९

पञ्चम खण्ड — ३७

षष्ठ खण्ड — ४५

५ अव्याकृत शब्दों की सूची — ५७

६ सहायक ग्रन्थावली — ५९

७ शुद्धिपत्र — ६०

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

भूमिका

(१) ब्राह्मण-ग्रन्थ

वैदिक-साहित्य में संहिताओं के बाद सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों में ब्राह्मणों का ही नाम है। वे ब्राह्मण ग्रन्थ संहिताओं के संकलन के पश्चात् उनकी याज्ञिक व्याख्या के लिए सम्भूत हुए। प्रत्येक वैदिक शाखा में जो संहिता प्रचलित थी उसकी स्थिति तभी तक थी जबतक यज्ञ में उसका प्रयोग हो क्योंकि बाद में चाहे जैसा भी सोचा जाय, पहले-पहल आम्नाय क्रियार्थक ही थे अर्थात् यज्ञ के प्रांगण में उनका उपयोग ही उनकी सबसे बड़ी सार्थकता थी। यही कारण है कि विभिन्न वैदिक शाखाओं के लिये उतने ही ब्राह्मण-ग्रन्थ भी निर्मित हुए जो तत्तत् शाखाओं में संकलित मंत्रों का, या न्यूनतम अधिकांश मंत्रों का, तत्संबद्ध विविध याज्ञिक-क्रियाओं में विनियोग बतला सकें। किन्तु जिस प्रकार वैदिक शाखायें नष्ट हुईं, उसी प्रकार उनके अधिकांश ब्राह्मण भी काल-क्रम से विगलित हुए। तथापि आज वैदिक-शाखाओं में प्राप्य संहिता ग्रन्थों की अपेक्षा ब्राह्मण-ग्रन्थ कुछ अधिक ही मिलते हैं। उदाहरणतः ऋग्वेद की संहिता एक ही (शाकल) मिलती है जब कि ब्राह्मण दो—ऐतरेय और कौषीतकि—मिलते हैं।

ग्रन्थ के रूप में ब्राह्मण का सर्वप्रथम उल्लेख तैत्तिरीय संहिता (३।७।१।१) में मिलता है—*एतद् ब्राह्मणान्येव पञ्च हवींषि*। तैत्तिरीय संहिता में ही, अन्य-संहिताओं के विपरीत, संहिता-खण्ड और ब्राह्मण-खण्ड परस्पर संवलित हैं अतएव ग्रन्थ के रूप में ब्राह्मणों की प्रसिद्धि उस काल तक हो जाना कोई आश्चर्य नहीं; संहिता-काल में भी ब्राह्मण थे क्योंकि यहाँ ब्राह्मणों के लक्षणों से लक्षित ग्रन्थों से अभिप्राय था—बाद में चलकर हम देखेंगे कि ब्राह्मणों में कितने ही अंश प्रक्षिप्त होते गये हैं जिससे उनका मूलांश (kernel) समृद्ध होता हुआ आधुनिक रूप में आया है। उसके अनन्तर ऐतरेय ब्राह्मण (६।२५, ८।२) तथा शतपथ ब्राह्मण (४।६।९।२०) में भी इसके उल्लेख

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मिलते हैं। यास्क के निरुक्त में तो कुछ कहना ही नहीं—अपने निर्वचनों के लिये तो नाम दे-देकर भी यास्क ने ब्राह्मणों का उद्धरण दिया है।

'ब्राह्मण' शब्द की व्युत्पत्ति ब्रह्मन् (√बृंह् = बढ़ना)—शब्द से हुई है जिसके दो अर्थ हैं—(१) वैदिक मंत्र—*ब्रह्म वै मन्त्रः* (श० ब्रा० ७।१।१।५)। वैदिक मंत्रों की व्याख्या—यज्ञपरक व्याख्या—करने के कारण ये ग्रन्थ ब्राह्मण कहलाये। किस मंत्र का प्रयोग किस स्थान में होगा उसकी प्रक्रिया प्रसंगादि देकर समझाई गई है। (२) यज्ञ—इस अर्थ के अनुसार ब्राह्मणों का मुख्य कार्य है यज्ञ के कर्मकाण्ड की व्याख्या तथा विवरण (Procedure) बतलाना। इन दोनों अर्थों में कोई विरोध नहीं है, इसे अन्तरंग-प्रमाण से भी हम जान सकते हैं। ऐतरेय ब्राह्मण (१।१।४) में कहा गया है—*एतद् वै यज्ञस्य समृद्धं, यद्रूपसमृद्धं, यत्कर्म क्रियमाणमृगभिवदति* अर्थात् यज्ञ में वही चीज समृद्ध (Perfect) है, जिसका रूप समृद्ध है तथा किये जाने वाले जिस कर्म का अभिवादन या समर्थन ऋचाओं (ऋग्वेद) से प्राप्त हो। तात्पर्य यह है कि यज्ञ की समृद्धि (पूर्णता) के लिए मंत्रों से (उस यज्ञ का समर्थित होना आवश्यक है। इस प्रयोजन की सिद्धि के लिए एक प्रकार से मंत्रों की व्याख्या ब्राह्मणों में हो ही जाती है, दूसरे मुख्य रूप से यज्ञ के विधि-विधानों का विवरण भी वहाँ मिलता है। इसी से प्रेरित होकर भट्ट भास्कर ने तैत्तिरीय-संहिता (१।५।१) के भाष्य में लिखा है—*ब्राह्मणं नाम कर्मणस्तन्मन्त्राणां च व्याख्यानग्रन्थः।* इस प्रकार ब्राह्मणों का सम्बन्ध मंत्रों और यज्ञों दोनों से है।

ब्राह्मणों में एक ऐसे विज्ञान का वर्णन है जो संसार के किसी भी साहित्य में उपलब्ध नहीं। वह है यज्ञ-विज्ञान (Science of Rituals) जिसने केवल इन्हीं ग्रंथों में पूर्णता प्राप्त कर ली थी। आधुनिक जगत् के भौतिकवाद की दृष्टि में भले ही उसका महत्त्व न समझा जाय किन्तु धर्मप्रवण व्यक्तियों की आध्यात्मिक दृष्टि में वह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण विज्ञान है। यज्ञ के प्रत्येक क्रिया-कलाप का अपना मूल्य है जिसका पूर्ण पालन करने पर ही समग्र फल की प्राप्ति तथा यज्ञ की पूर्णता निर्भर करती है। क्रिया-कलापों के अन्तर्गत विभिन्न देवताओं का आवाहन, उनकी स्थापना, पुरोहितों का कार्य-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

विभाजन, हविर्निर्माण, वेदिका और कुण्ड की रचना आदि कतिपय विषय तो अर्थशास्त्र, गणितशास्त्रादि विषयों की भी मूलभित्ति स्थापित करते हैं। किन्तु वास्तव में यज्ञ अध्यात्मशास्त्र का विषय है। यज्ञ को ही प्रजापति, विष्णु तथा आदित्य कहा जाता है (श० ब्रा० ४।३।४।३, १४।१।१।६ इत्यादि)। यज्ञ की महनीयता की नींव पर ही मीमांसा-जैसा गम्भीर दर्शन खड़ा है। मीमांसा-दर्शन ने ब्राह्मण-ग्रंथों की पूरी मीमांसा करके उन्हें अमर कर दिया है। यज्ञ-विज्ञान के आध्यात्मिक और भौतिक—दोनों पक्षों का एक विशाल कोश ब्राह्मणों के रूप में हमें उपलब्ध है।

संहिता और ब्राह्मण-भागोंका विभाजन करनेवाला तत्त्व (distinguishing feature) है विधि (injunction)। इसी का विचार मीमांसा के पिछले ग्रंथों में विस्तारपूर्वक किया गया है। प्रेरणा प्रदान करने वाले वाक्यों को विधि कहते हैं। इसी से ब्राह्मणों ने यज्ञ पर इतना जोर दिया है कि लोक यज्ञों की ओर प्रवृत्त हो जिसके लिए उनका अमोघ अस्त्र विधि ही है। विधि के अलावे और कुछ विषयों का वर्णन भी ब्राह्मणों में मिलता है जिनका हिरण्यकेशी और आपस्तम्ब सूत्र के आरंभिक अध्यायों में उल्लेख किया गया है। तदनुसार ब्राह्मणों के ये विषय हैं—

(१) *कर्मविधान (विधि)* (Injunctions)—इस वर्ग में किसी विशिष्ट यज्ञ के विधानों का वर्णन है जो आज्ञा के रूप में विधिलिङ् में अभिव्यक्त हैं जैसे—यजेत, शंसेत्, कुर्यात आदि। कुछ विधियाँ छोटी हैं तथा कुछ बड़ी। ब्राह्मणों के बहुत बड़े भाग में ये ही हैं।

(२) *अर्थवाद* (Explanatory passages)—मंत्रों के अर्थ या विशिष्ट यज्ञ पर दी गई उक्तियाँ अर्थवाद है जिनमें किसी विषय की निन्दा या प्रशंसा रहती है जैसे—*अमेध्या वै माषाः, वायुर्वै क्षेपिष्ठा देवता*। यहाँ अलंकृत वाक्य भी मिलते हैं जिनमें गौण अर्थ छिपे रहते हैं, उन्हें गुणार्थवाद भी कहते हैं। अर्थवादों का लक्ष्य विधिवाक्यों को पुष्ट करना ही है (विधिना त्वेकवाक्यत्वात् स्तुत्यर्थेन विधीनां स्युः, जै० सू० १।२।७)। इन अर्थवादों में दर्शन, व्याकरण तथा काव्य-शास्त्र के मूलरूप दृष्टिगोचर होते हैं यद्यपि नियतरूप से कोई सम्प्रदाय नहीं मिलता। मुक्ति का सिद्धान्त जो बाद में वेदान्त-दर्शन में

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पल्लवित किया गया, अर्थवादों में छिटपुट रूप से प्राप्त होता है। सयुजता (मिलन), सरूपता (एक रूप का होना) तथा सलोकता (एक स्थान पर होना) जैसे शब्दों का बहुधा प्रयोग हुआ है। ये शब्द मुक्ति की विभिन्न अवस्थाओं की सूचना देते हैं। दृश्य और अदृश्य जगत् के बीच का सम्बन्ध यहाँ भलीभाँति वर्णित है। उसी प्रकार ऐतरेय ब्राह्मण की पञ्चम पञ्चिका व्याकरण-शास्त्र के इतिहास में बहुत अधिक महत्त्वपूर्ण है। इससे हमें पता चलता है कि मंत्रों के अर्थ को जानने के लिए निरुक्ति (etymology) के बल पर उपाय ही नहीं निकाले गये थे, प्रत्युत शब्दों का विभाजन भी एकवचन, बहुवचन, भूत, वर्तमान और भविष्यत् आदि के आधार पर होने लग गया था।

(३) *निन्दा* (Censure)—विरोधियों की उक्तियों या विधियों का खंडन करने के लिए निन्दा का आश्रय लिया गया है। किसी यज्ञ की प्रक्रिया में बहुत सी विधियाँ थीं जिनमें एक-एक सम्प्रदाय वाले दूसरे की विधि को दूषित करते थे तथा कड़े शब्दों में वैसा न करने का विधान करते थे। यही नहीं, वैसा करने पर यज्ञकर्त्ता को मृत्यु, अग्निदाह आदि का भय दिखलाया जाता था। ऐसे ही वाक्य निन्दा के हैं। यद्यपि ये भी अर्थवाद के अन्तर्गत ही आते हैं किन्तु गुणार्थ (indirect meaning)—न रहने के कारण इन्हें पृथक् किया गया है।

(४) *शंसा* (Praise)—इस वर्ग के वाक्यों में यज्ञ को पूर्णतया जानने या करनेवाले को इष्ट फल मिलने का वर्णन रहता है। ऐसे वाक्यों में सर्वत्र 'य एवं वेद' का प्रयोग मिलता है जैसे—*शोभतेऽस्य मुखं य एवं वेद* (जो ऐसा जानता है उसका मुख शोभा पाता है)।

(५) *पुराकल्प* (Ancient Rites & Legends)—इसके अन्तर्गत प्राचीन काल के यज्ञ-विधान तथा आख्यान आते हैं। इनमें अधिकांशतः 'ह' का प्रयोग होता है, शुनःशेप का उपाख्यान इसी का उदाहरण है। देवताओं और असुरों का युद्ध-वर्णन, देवताओं द्वारा किये गये यज्ञों का वर्णन आदि इसके विषय हैं। प्रधान आख्यान ये हैं—अग्निमंथन के समय घोड़े को आगे रखने का इतिहास (शतपथ० १।६।४।१५), असुरों और देवों के बीच नाना संग्राम

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

(शतपथ० २।१।६।८-१८, ऐतरेय० १।४।२३; ६।२।१), स्वर्भानु असुर का आदित्य पर आक्रमण तथा अत्रि द्वारा उस अन्धकार का विघटन। हौग ने कल्पना की है कि कि देवों (भारतीयों) और असुरों (अहुर-मज़्दा के उपासक ईरानियों) के बीच धार्मिक-संग्राम ब्राह्मणों की रचना के बहुत पहले ही हुई थी जिससे १२०० ई० पू० (होग द्वारा निश्चित ब्राह्मणों की तिथि) के पहले यह घटना ज्ञात होती है।

(६) *परकृति* (Achievements of Others)—इसमें प्रधान श्रोत्रियों और याज्ञिकों के द्वारा किये गये यज्ञों तथा राजाओं के दानादि का वर्णन है। ऐतरेय ब्राह्मण की अष्टम पञ्चिका में इसके उदाहरण बहुत से हैं।

शबरस्वामी ने मी० सू० २।१।८ की व्याख्या में ब्राह्मणों के दस विषयों का नाम लिया है।

हेतुर्निर्वचनं निन्दा प्रशंसा संशयो विधिः।
परक्रिया पुराकल्पो व्यवधारणकल्पना॥
उपमानं दशैते तु विधयो ब्राह्मणस्य तु।

किसी विशेष विधान का कारण बतलाना हेतु है जिससे श्रोता की श्रद्धा उसपर और भी बढ़ जाती है। उदाहरण के लिए ताण्ड्य ब्राह्मण (६।५।१) में द्रोण कलश में सोमरस चुलाकर रथ के नीचे रखने का कारण बतलाया गया है। अन्यतः, 'तेन ह्यन्नं क्रियते' जिसमें 'तेन हि' से स्पष्ट हेतु समझा जाता है। निर्वचन या निरुक्तियाँ तो ब्राह्मणों में भरी हैं। कौन शब्द किस धातु से किस अर्थ में निकला है इसका ज्ञान देना ही निरुक्ति है जैसे—इमान् लोकान् प्रजापतिः सृष्ट्वेदं सर्वमशक्नोद् यदिदं किंच, तच्छक्वर्योऽभवन्, तत् शक्वरीणां शक्वरीत्वम्। (ऐ० ब्रा० ५।७) इस प्रकार ब्राह्मणों के विषयों का वर्गीकरण किया गया है जो अपूर्ण है। वास्तव में ब्राह्मणों के दो ही भाग हैं—विधि (चोदनालक्षणो विधिः) तथा अर्थवाद (विधिशेषोऽर्थवादः)। ये दो भेद ही व्यापक हैं।

उपर्युक्त विवेचना से ब्राह्मणों के विषय में कुछ विचार स्पष्ट होने की सम्भावना है। अब प्रत्येक वैदिक संहिता के ब्राह्मणों का नामग्राह उल्लेख करके अपने प्रस्तुत विषय में प्रवेश किया जायगा।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri Funding: MIDF

वेद	शाखा	ब्राह्मण
क. ऋग्वेद	१. शाकल	ऐतरेय ब्राह्मण
	२. बाष्कल (अप्राप्य)	कौषीतकि (शांखायन) ब्राह्मण
		१. पंचविंश (प्रौढ या ताण्ड्य महाब्राह्मण)
		२. षड्विंश ब्राह्मण
		३. सामविधान ब्राह्मण
		४. आर्षेय ब्राह्मण
		५. मंत्र (उपनिषद्) ब्राह्मण
		६. देवताध्याय ब्राह्मण
		७. वंश ब्राह्मण
		८. संहितोपनिषद् ब्राह्मण
	२. राणायणीय (अप्रा०)	कतिपय सूत्रग्रन्थों में रक्षित
	३. जैमिनीय	१. जैमिनीय ब्राह्मण
		२. जैमिनीयोपनिषद् (तलवकार ब्राह्मण)
		३. आर्षेय ब्राह्मण ?
ग. कृष्णयजुर्वेद	१. तैत्तिरीय	१. क. तैत्तिरीय संहिता (ब्राह्मण भाग)
		१. ख. तैत्तिरीय ब्राह्मण (संहिता भाग को छोड़कर)
	२. मैत्रायणी	मैत्रायणी संहिता (ब्रा० भा०)
	३. कठ	काठक संहिता (ब्राह्मण भाग)
	४. कठकापिष्ठल (अंशतः प्राप्त)	कापिष्ठलकठसंहिता (ब्रा. भा.)
घ. शुक्लयजुर्वेद	१. काण्व	शतपथ ब्राह्मण
	२. माध्यन्दिन	शतपथ ब्राह्मण
ङ. अथर्ववेद	१. पैप्पलाद (अंशतः)	×
	२. शौनक	गोपथ ब्राह्मण

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इस प्रकार पूर्णतया प्रायः २० ब्राह्मण ग्रंथ अपने रूप में हमें सुरक्षित मिलते हैं।

ब्राह्मण ग्रंथों का विश्लेषण करने से हमें निम्नलिखित चार दृष्टियों से ये महत्त्वपूर्ण लगते हैं—(१) ब्राह्मणों ने यज्ञ को एक शास्त्र का रूप दे दिया था जिनका पूरा विवरण वे हमारे समक्ष प्रस्तुत करते हैं। यज्ञों में किये गये विभिन्न प्रकार के अनुष्ठानों, क्रिया-कलापों तथा संग्रहों के इतिहास का परिचय पाने के लिये हमें ब्राह्मण-ग्रंथों का ही सर्वप्रथम अध्ययन करना पड़ेगा। (२) व्याकरण और निरुक्त की मौलिक उद्भावनायें भी यहीं दिखलाई पड़ती हैं। निरुक्तकार ने निर्वचनों का मूल आधार इन ग्रंथों को ही माना है तथा इनके बाद ही वे अपनी कल्पनाओं का प्रसारण करते हैं। व्याकरण के तत्त्वों—जैसे काल, वचन आदि—की विवेचना ब्राह्मणों में ही आरंभ हो जाती है। (३) जिन आख्यानों ने पुराणों में अपना विराट् रूप धारण कर लिया है उनका भी मूल रूप हमें ब्राह्मणों में ही मिलता है। उदाहरण के लिए मत्स्योपाख्यान (शत० ब्रा०) तथा हरिश्चन्द्रोपाख्यान (ऐ० ब्रा०) को ले सकते हैं। (४) शास्त्र के रूप में कर्म-मीमांसा को जन्म देने वाले ये ब्राह्मण ग्रंथ ही हैं। इन्हीं के याज्ञिक कृत्यों को आध्यात्मिक दृष्टिकोण से समझने के लिये मीमांसा-दर्शन की उत्पत्ति हुई थी। इस प्रकार मूलतः यज्ञ की प्रयोजनसिद्धि के लिए इन विविध शास्त्रों को कतिपय वाक्यों में ही सीमित रखा गया और बाद में ये अपने विशाल क्षेत्र को अपनाकर स्वतंत्र शास्त्र ही बन गये। सभी विज्ञानों की यही कथा है।

यही नहीं, ब्राह्मणों के अध्ययन से हमें तात्कालिक इतिहास और भूगोल का भी पता लगता है। कुरुपांचाल देश और सरस्वती का तट ब्राह्मणों का सुपरिचित था, सरस्वती नदी लुप्त हो गई थी अतः उसका नाम 'विनशन' पड़ा। संहिता काल की अपेक्षा इस युग में आर्य लोग बहुत पूर्व की ओर बढ़ गये थे। कतिपय राजनैतिक व्यक्तियों और उनके राज्यों का वर्णन मिलने से हम इतिहास का भी पता पा सकते हैं। ब्राह्मणों में ही हमेंसर्वप्रथम सुव्यवस्थित गद्य मिलता है जिससे तात्कालिक भाषा के विषय में अनुपम

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ज्ञान की प्राप्ति संभव है। संक्षेप में, ब्राह्मण-ग्रंथ हमारे साहित्य की समस्त उपलब्धियों के मूलभूत रत्न हैं—इसमें सन्देह नहीं।

(२) ऐतरेय-ब्राह्मण और उसकी रचना

ऋग्वेद-संहिता के इस समय दो ब्राह्मण उपलब्ध हैं—ऐतरेय और कौषीतकि (शांखायन)। ऐतरेय ब्राह्मण में ४० अध्याय और कौषीतकि में ३० अध्याय। पाणिनि ने अष्टाध्यायी (५।१।६२) में एक सूत्र दिया है—'त्रिंशच्चत्वारिंशतोर्ब्राह्मणे संज्ञायां डण्', जिसके अनुसार तीस और चालीस अध्यायों के ब्राह्मणों का अर्थ होने पर त्रिंशत् और चत्वारिंशत् शब्दों से डण् प्रत्यय होता है। इस सूत्र की सूचना द्वारा विदेशी विद्वानों ने (सर्वप्रथम वेबर ने बर्लिन के अपने भाषण में इसे रखा था) कल्पना की है कि ऐतरेय (४० अध्याय वाले) तथा कौषीतकि (३० अध्याय वाले) ब्राह्मणों की सूचना पाणिनि को थी। यही नहीं, बहुत से वैदिक सूत्रों के उदाहरण भी केवल इन्हीं ब्राह्मणों में मिलते हैं।

भारतीय परम्परा में 'ऐतरेय' शब्द की उत्पत्ति 'इतरा' से हुई है। सायण ने अपने भाष्य की भूमिका में सम्प्रदायवेत्ताओं के नाम से ऐतरेय की उत्पत्ति की कहानी बतलाई है।

एक प्राचीन ऋषि की कई पत्नियाँ थीं। उनमें इतरा भी एक थी। इतरा को महिदास नाम का एक पुत्र हुआ (जिसे ऐतरेय आरण्यक २।१।७ तथा ३।८ में महिदास ऐतरेय कहा गया है) ऋषि महिदास को उतना नहीं मानते थे जितना वे अपनी दूसरी पत्नी के पुत्रों को मानते थे। इसकी पराकाष्ठा यहाँ तक पहुँची कि महिदास को छोड़कर अन्य सभी पुत्रों को उन्होंने एक बार अपनी गोद में बैठा लिया था। इस पर क्षुब्ध होकर महिदास की माता इतरा ने अपनी कुलदेवता भूमि-माता की प्रार्थना की जो सभा में ही अपने दिव्यरूप में प्रकट हुईं तथा उन्होंने महिदास को एक सिंहासन पर बैठाकर एक ब्राह्मण ग्रन्थ के प्रवचन का वर दिया। वर-प्राप्ति के अनन्तर ४० अध्यायों का एक ब्राह्मण-ग्रन्थ, जिसके आद्यक्षर—'अग्निर्वै देवानामवमः' थे तथा

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अन्त्याक्षर 'स्तृणुते स्तृणुते' थे, महिदास के मनःपटल पर प्रकट हुआ। इसके बाद एक दूसरे आरण्यक ऋषि (अरण्यवासी ऋषि) के वर के रूप में ऐतरेय आरण्यक की मानसिक उपलब्धि उसे हुई। इसमें भी प्रथम तीन आरण्यकों के ही साक्षात्कार की कथा है अतः बाद के दो आरण्यक (chapters) प्रक्षिप्त प्रतीत होते हैं।

उपर्युक्त कथा के द्वारा 'ऐतरेय' का सम्बन्ध 'इतरा' से है, किन्तु यह कथा पश्चाद्वृत्ति (Back–formation) का उदाहरण है।[1] अवेस्ता में ऋत्विज के अर्थ में 'एथ्रेय' शब्द मिलता, सम्भव है कि ऐतरेय का सम्बन्ध भी इसी एथ्रेय से हो और इसका अर्थ भी ऋत्विज या ऋत्विज से संबद्ध (ब्राह्मण) हो। सम्पूर्ण ऐतरेय ब्राह्मण में होतृ-नामक ऋत्विज के द्वारा यज्ञ में संपादनीय विविध कार्य-कलापों का वर्णन है। होतृ का संबन्ध ऋग्वेद से ही होता है इसलिए उसी के कार्य इस ब्राह्मण में आये हैं।

ऐतरेय ब्राह्मण पाँच-पाँच अध्यायों वाली आठ पंचिकाओं में बँटा हुआ है। प्रत्येक अध्याय में कुछ खण्ड हैं जिन्हें कण्डिकायें कहते हैं। इस प्रकार पूरा ब्राह्मण ४० अध्यायों और २८५ कण्डिकाओं में बँटा है। इन कण्डिकाओं की गणना प्रत्येक अध्याय में तथा प्रत्येक पंचिका में भी आरम्भ से ही की जाती है।

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, ऐतरेय ब्राह्मण में होतृनामक पुरोहित के कार्यों का वर्णन हैं जो उसे सोमयाग तथा राजसूय में संपादित करने पड़ते हैं। होतृ-पुरोहित से सम्बद्ध छोटे-छोटे यज्ञ और इष्टियाँ छोड़ दी गई हैं। इन होताओं के भी तीन भेद हैं—

---

१ पश्चाद्वृत्ति का अर्थ है किसी बने-बनाये शब्द की व्युत्पत्ति देने के लिये किसी नये शब्द को गढ़ लेना, या किसी कथा की ही कल्पना करना = आगे से पीछे की ओर जाने की कल्पना। उदाहरणार्थ—ऐतरेय के लिए 'इतरा' शब्द तथा उसकी कथा की कल्पना। 'विधवा' के लिए 'धव' शब्द की कल्पना; जिसके समर्थन के लिए 'मधु' से बना हुआ 'माधव' (मा + धव = लक्ष्मी का पति) मिला। वास्तव में विधवा भारत-यूरोपीय भाषाका शब्द है। तुल० widow.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri Funding: MIDF

(१) *होता*—होतृ पुरोहितों में प्रधान स्थान रखता है। (२) *होत्रक*—छोटा होता, जिसके भी भेद हैं—मैत्रावरुण (प्रशास्ता), ब्राह्मणाच्छंसी, तथा अच्छावाक । (३) *होत्राशंसिनः*—होतृ-मंत्रों का उच्चारण करनेवाले, इस में ये आते हैं—पोता, नेष्टा, अग्नीध्र । इस प्रकार इन सात होतृ-पुरोहितों के कार्यों का उल्लेख इस ब्राह्मण में है ।

चूँकि कर्मकाण्ड का विवरण हम पृथक् रूप से करेंगे अतः इस स्थान पर ऐतरेय ब्राह्मण की विषय-वस्तु का निरूपण करना अभीष्ट है। प्रथम पाँच पंचिकाओं में सोमयाग का विस्तृत विवरण किया गया है। इसमें दीक्षणीय इष्टि (१), प्रारंभिक या प्रायणीय इष्टि (२), सोम खरीदना और अग्निमंथन (३), प्रवर्ग्य उपसद् तथा तानूनप्त्र इष्टियाँ (४), तथा अग्नि, सोम और हविर्धानों का उत्तर वेदी पर ले जाना—ये सारे विषय प्रथम पंचिका के हैं। द्वितीय पंचिका में पशु-इष्टि (६), प्रातरनुवाक (७), अपोनप्त्रीय (८), सोमपान का अधिकार (९), तथा आज्य शस्त्र (१०), का वर्णन है। तृतीय पंचिका में प्रउगशस्त्र, वषट्कार एवं निविद् (११), मरुत्वतीय और निष्केवल्य शस्त्र (१२), वैश्वदेव और अग्निमारुत शस्त्र (१३), अग्निष्टोम याग के विषय (१४), तथा यज्ञ के विषयों का सामान्य विवेचन (१५), ये सब हैं। चतुर्थ पंचिका में षोडशी और अतिरात्र यज्ञ (१६), आश्विन और गवानयन कृत्य (१७), षडह और विषुवान् सत्र (१८), द्वादशाह कृत्य (१९) तथा द्वादशाह यज्ञ के प्रथम दो दिनों का कृत्य (२०) दिखलाया गया है। पंचम पंचिका के चार अध्यायों तक (२१-२४) द्वादशाह यज्ञ के दो-दो दिनों (जैसे—३ रा और चौथा दिन का कृत्य २१ वें अध्याय में) का कृत्य है, जिसमें २४ वें अध्याय में नवम-दशम दिनों के कृत्य के साथ-साथ यज्ञ की पूर्ति दिखलाई गई है। २५ वें अध्याय में अग्निहोत्र कर्म तथा ब्रह्मा के कर्तव्यों का निरूपण है।

षष्ठ पंचिका होत्रकों के शस्त्रों (यज्ञों) से संबद्ध है जिसमें ग्रावस्तुत सुब्रह्मण्या के कृत्य (२६), सत्र और अहीन में होत्रकों के शस्त्र (२७), होत्रकों के विभिन्न विषय (२८), संपात सूक्त, वालखिल्य और दूरोहण (२९), तथा तृतीय सवन के शिल्प शस्त्रों का वर्णन (३०) है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सप्तम पंचिका में पशुयाग, प्रायश्चित्ति तथा राजसूय का वर्णन है जिसमें क्रमशः पशुओं के अंगों का विभाजन (३१), यज्ञ की अशुद्धियों के लिए प्रायश्चित्तियाँ (३२), शुनःशेप की कथा (३३), राजसूय यज्ञ के प्रारम्भिक कृत्य (३४) तथा राजा के लिए सोमपान का निषेध करके उदुम्बर, अश्वत्थ और न्यग्रोध आदि के रसपान की विधि (३५) वर्णित है।

अष्टम पंचिका में केवल राजसूय का ही वर्णन है—राजसूय यज्ञ के प्रातः, मध्यम और तृतीय सवन के स्तोत्र तथा शस्त्र (३६), इष्टि की समाप्ति पर पुनरभिषेक (३७), इन्द्र का महाभिषेक (३८), उसी विधि से क्षत्रिय राजा का महाभिषेक (३९) तथा पुरोहित का कृत्य (४०) इतने विषयों का वर्णन है।

अब हमें विचार करना है कि समूचा ऐतरेय ब्राह्मण एक ही व्यक्ति की सम्पादित कृति है या विभिन्न व्यक्तियों की। यद्यपि उपर्युक्त रीति से समूचे ग्रन्थ में एक निश्चित योजना दृष्टिगोचर होती है किन्तु कुछ आवृत्तियों, प्रक्षेप, तथा शैली की विभिन्नताओं की सत्ता के कारण हमें यह मानने को बाध्य होना पड़ता है कि कई सम्पादकों के हाथों से यह पार हुआ है। उदाहरणार्थ, प्रातःसवन के आज्य-सूक्त की व्याख्या कुछ अन्तर देकर २।४० तथा २।४१ में हुई है। 'अग्निर्देवेद्धः' मंत्र की उत्पत्ति दो बार दी गई है—२।३२ में (जहाँ इसे निविद् कहा गया है) तथा २।३९ में (जहाँ इसे पुरोरुक् कहा गया है)। द्वितीय पंचिका की चार अंतिम कंडिकाएँ परिशिष्ट के रूप में प्रतीत होती हैं। ५।२७ और ७।३ तो बिल्कुल एक ही हैं। षष्ठ पंचिका की ५ वीं और १७ वीं कण्डिकाओं में एक ही बात का वर्णन है। अष्टम पंचिका में तो कई आवृत्तियाँ हैं—१३ वीं कंडिका और १८ वीं समान हैं, १४ वीं और १९ वीं भी समान ही है। सप्तम पंचिका की १० वीं और ११ वीं कण्डिकायें प्रक्षेप मालूम होती हैं क्योंकि इनमें शैली का वैशिष्ट्य है तथा प्रसंग के क्रम में व्यवधान भी डाला गया है। ये बातें एक लेखक की कृति के विरोध में हैं।

ऐतरेय ब्राह्मण की अपनी सामग्री तथा कौषीतकि से इसकी तुलना करने पर हमें पता लगता है कि इसका अपना विषय सोमयाग है, अतः सोमयाग के

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अतिरिक्त सारी सामग्री प्रक्षिप्त है। यही नहीं, कौषीतकि और ऐतरेय में सर्वत्र समता है किन्तु जो अंश इसमें व्यवधान डालता है उसपर निश्चय ही हमें संदेह की दृष्टि रखनी पड़ती है। इस प्रकार के अंशों में सप्तम और अष्टम पंचिकायें हैं जिनकी न तो कौषीतकि में समता ही है और जो न सोमयाग से सम्बद्ध ही है। इनमें विशेषतः राजसूय यज्ञ में राजा का अभिषेक तथा सोम के स्थान में राजा (क्षत्रिय) के लिए अन्य रस का पान—ये ही वर्णित हैं। स्मरणीय है कि सोम-पान केवल ब्राह्मणों के ही लिए विहित है।

इस अंश का आरंभ शुनःशेप की कथा से होता है जो राज्याभिषेक के बाद क्षत्रिय को सुनाने के लिए है (७।१३–१८)। फिर तुरत (१९–२६) यह सिद्ध किया गया है कि ब्राह्मणों की शक्ति पर ही राजाओं की शक्ति अवस्थित है और राजा को सोम पीना निषिद्ध बताया गया है। अन्ततः (२७–३४) ब्राह्मणों पर राजाओं की निर्भरता की कथा है। अष्टम पंचिका में भी ब्राह्मणों और पुरोहितों की प्रशंसा के गीत गाये गये हैं। इस प्रकार सप्तम और अष्टम पंचिकाओं का विषय पूरे ब्राह्मण के विषयों से बिल्कुल पृथक् है। यही नहीं, अभिषेक का जैसा विवरण यहाँ मिलता है उस रूप में अन्यत्र (अभिषेक का वर्णन करने पर भी) नहीं मिलता। हाँ, शतपथ ब्राह्मण (१३।५।४) अश्वमेध के नाम से कुछ इसी प्रकार की बातें हैं। अतः ऐतरेय ब्राह्मण के इस अंश पर संदेह करना स्वाभाविक है।

शाङ्खायन श्रौत सूत्र में शुनःशेप की कथा (१५।१७-२७) ऐतरेय की तरह ही है किन्तु वहाँ उसके लिए कोई प्रसंग उपस्थित नहीं किया गया है। कुछ ही स्थानों में ऐतरेय की कथा से वह भिन्न पाठ रखता है; कथा में कोई परिवर्तन नहीं है, केवल भाषा ही बदली है। यह कहना बड़ा कठिन है कि शांखायन में उसे क्यों लिया गया—कथा की सुन्दरता के सिवाय और कोई कारण मिलता नहीं। अपनी शाखा में भी तो वैसी मनोरम कथा होनी चाहिए। भाषा के कुछ परिवर्तन उसकी परकालिकता सिद्ध करते हैं। रोहित जहाँ ऐतरेय में केवल ६ वर्षों तक वन में घूमता है, यहाँ उसके लिए ७ वाँ वर्ष भी है। ऐतरेय में कुछ अशुद्ध रूप भी हैं जैसे—सांनाहुकः, अशनया

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

परीतः, निनियोज, निःशान आदि, जब कि ईत्तामास (चक्रे के स्थान पर) को छोड़कर शां० श्रौ० सू० की कथा में भाषा-दोष बहुत कम हैं।

ऐतरेय के अन्तिम अध्याय में एक ऐसे दार्शनिक सिद्धान्त का निरूपण है जिसमें विद्युत्, वर्षा, चन्द्र, सूर्य, अग्नि को वायु (एकदेवतावाद) के अन्तर्भूत किया गया है किन्तु इसका उपयोग बिल्कुल तुच्छ कार्य में है कि पुरोहित राजा के शत्रुओं को दबावे। यह परकालिक सिद्धान्त का द्योतक है।

सप्तम पंचिका के प्रथम अध्याय में पशु के अंगों का विभाजन पुरोहितों तथा उनके सहायकों में होने का विधान है जिसका आरंभ होता है—अथातः पशोर्विभक्तिः। तस्य विभागं वक्ष्यामः। आश्वलायन श्रौत सूत्र (१२।९) में यह अंश पूर्णतया प्राप्त है अतः मूल रूप में जो भी रहा हो, संप्रति उपलब्ध अंश तो अवश्य बाद का योग है।

इस पंचिका के द्वितीय अध्याय में अग्निहोत्रियों के विभिन्न प्रायश्चित्तों का वर्णन है। इसमें दो स्थान स्पष्टतः असंगत लगते हैं। एक तो ७।१० का खंड जिसमें पत्नी की मृत्यु हो जाने पर अग्निहोत्री के द्वारा होने वाले होम का वर्णन है। यह अस्पष्ट तथा प्रक्षिप्त है। दूसरा स्थल इसके बाद का है (७।११) इसे हम केवल तर्क से ही प्रक्षिप्त सिद्ध नहीं करते, प्रत्युत यह तो कौषीतकि (३।१) का विकृत रूप है जिसमें पूर्णिमा और अमावस्या के उपवासों का वर्णन किया गया है। सायणाचार्य भी दोनों कंडिकाओं की व्याख्या के आरंभ में कहते हैं कि कुछ देशों में ये दोनों खण्ड नहीं पढ़े जाते और उनके पूर्वाचार्यों ने इनकी टीका नहीं की है।

शेष अध्याय तो सूत्र की ही शैली में हैं; यहाँ तक कि ७।३ (जो ५।२७ की आवृत्ति मात्र हैं) आश्वलायन श्रौत सूत्र (३।११) अधिकांशतः पाया जाता है। आ० सू० के तृतीय अध्याय में सप्तम पंचिका के अन्य खंडों के कुछ-न-कुछ अंश मिलते हैं। इनका पूरे ब्राह्मण से कोई संबंध नहीं।। पंचम पंचिका के अन्तिम अध्याय के साथ भी यही बात है जिसमें अग्निहोत्र, इसके समय तथा प्रायश्चित्त के वर्णन हैं। इनका सोमयाग से कोई सम्बन्ध नहीं है। हाँ, कौषीतकि में इनका वर्णन है (२।९ तथा ६।१०-१४) जिससे प्रतीत होता

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri Funding: MIDF

है कि ये बातें ऐतरेय में भी ले ली गई हैं।[1] सूत्रशैली के कारण ही इन्हें प्रक्षिप्त मानते हैं।

षष्ठ पंचिका को भी विद्वानों ने पूरक के रूप में ही स्वीकार किया है। इसमें होता के कार्यों का वर्णन है किन्तु उसके सहायकों को छोड़ दिया गया है। बेवर (Weber. Indischen Studien ix. 372) का तर्क है कि प्रथम चौबीस अध्यायों में किसी के विचारों को काटने के लिए सूत्र हैं—'तत्तन्नाहत्यम्' तथा 'तत्तथा न कुर्यात्' जब कि अन्य अध्यायों में केवल दूसरे को ही 'तद्‌ु पुनः परिचक्षते' के साथ रखा गया है। १–२४ अध्यायों में केवल एक ही बार 'तत्तथा न कुर्यात्' आया है। इसके अलावे आन्तरिक रचना के आधार पर भी षष्ठ पंचिका को प्रक्षिप्त सिद्ध कर सकते हैं। षष्ठ पंचिका की रचना निकृष्टतर है। उदाहरण के लिए ६।५ और १७ में स्तोत्रिय मंत्रों की आवृत्ति की गई है जो निष्कारण है। ६।८ और २३ में तो विरोध भी है।

यही दशा वालखिल्यों की भी है। स्वभावतः इन्हें नाभानेदिष्ठ और नाराशंस के बाद ६।२८ में आना चाहिये–वहाँ उनका वर्णन भी पूर्णरूप से है। किन्तु ६।२४ में वे पहले-पहल आते हैं। इनके पढ़ने के भी दो ढंग बतलाये गये हैं लेकिन इनका प्रयोग न तो ब्राह्मण में ही है और न आश्व० श्रौ० सू० (८।२) में ही। आवृत्ति तथा संशय से यह अंश परिपूर्ण है। अच्छावाक शिल्पशास्त्र का वर्णन (६।१६) तथा उसका नाराशंस से कोई संबंध नहीं दिखलाना भी भ्रान्तिमूलक है। सोमाध्यायों के संघटन से इनका संघटन

---

[1] प्रो० कीथ का उपर्युक्त तर्क बिल्कुल असंगत जान पड़ता है। कौषीतकि से संबंध दिखलाते वे यह कहते हैं कि ब्राह्मण, अग्निहोत्रादि के वर्णन-भाषा की दृष्टि से कौषीतकि में अर्वाचीन हैं, ऐतरेय में प्राचीन हैं फिर भी ऐतरेय के ये खंड मूलतः उसमें नहीं थे—कौषीतकि को देख कर ही लिए गये। यह स्वतः विरोधी वाक्य हैं। देखें—The portion ragarding the Brahman also shows no trace of later origin than the corresponding Kausitaki text. But the section cannot really have been originally part of the Brahmana of the Soma sacrifice. (p. 31, Introduction).

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अत्यन्त निकृष्ट है। इसके सिवाय ६।२७-३० में शिल्प का वर्णन ५।१५ में होतृपाठ से बिलकुल असंगत बैठता है। बिना किसी संबंध के दोनों अंशों का एक ग्रन्थ में होना ठीक नहीं लगता। सायण तो चुपचाप आँख मूँदकर ही पार कर जाते हैं। आश्व० या शांखा० श्रौ० सूत्रों में भी कुछ विचार नहीं किया गया है। इस प्रकार षष्ठ पंचिका जोड़ी गई है। यह प्रथम प्रक्षेप है क्योंकि होत्रकों के कार्य में यज्ञकर्त्ता की सहायता करनेवाले व्यक्ति (जो मौन रूप से कार्य-संपादन करता है) के कार्यों को देकर होतृ के यज्ञ को पूरा करने की चेष्टा की गई है।

चौदहवें अध्याय को (३।३९-४४) भी वेवर प्रक्षिप्त मानते हैं। इसमें अग्निष्टोम का वर्णन है जिसका प्राकृतिक सम्बन्ध शेष भागों से नहीं है। एक बात और भी है—३।४१ में उक्थ्य, षोडशी, और अतिरात्र के स्थान में उक्थ्य वाजपेय, अतिरात्र और अप्तोर्याम संस्थाओं का नाम लिया गया है। वाजपेय और अप्तोर्याम का नाम फिर कहीं भी नहीं आता—यहाँ तक कि कौषीतकि ब्राह्मण में भी अन्तिम अध्याय में ही आया है। कौषीतकि में समानता न मिलने के कारण ही इस पर आपत्ति उठाई जाती है।

विषयवस्तु को ध्यान में रखने से ही प्रक्षेपों की सिद्धि नहीं होती, प्रयोगों को देखने पर भी यही बात मिलती है। प्रथम चौबीस अध्यायों में विवरण के लिए लङ् लकार का ही प्रयोग हुआ है, लिट् प्रायः नहीं है। पचीसवें अध्याय से लिट् का अनुपात बढ़ते जाता है तथा शुनःशेपोपाख्यान में तो उसका बहुमत ही है। बाद के १६ अध्यायों की रचना कौषीतकि तथा शतपथ ब्राह्मण की रचना से मिलती है। मूल अंश (१-२४ अध्याय) में 'ब्राह्मण' शब्द व्याख्यान के अर्थ में आया है जब कि बाद के प्रक्षिप्त अंशों में ग्रन्थ के रूप में हैं जैसे तस्योक्तं ब्राह्मणम् (६२५), 'इति ब्राह्मणमुदाहरन्ति' (७।१२)। कौषीतकि में भी यह खूब व्यवहृत है।

उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर प्रो० कीथ निम्नलिखित प्रक्षेप-क्रमों की प्राप्ति करते हैं—

(१) प्रथम—चतुर्थ पंचिका, पंचम पंचिका (१-२५) = १ से लेकर २४ अध्याय तक (सोमयाग); ३।३९-४४ तक प्रक्षिप्त की सम्भावना,

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

(२) पंचम पंचिका (२६-३४ अग्निहोत्र तथा ब्रह्मा के कार्य);
(३) षष्ठ पंचिका—सोमयाग में होत्रों के कार्य;
(४) सप्तम पंचिका का प्रथम अध्याय=याज्ञिक पशु का विभाजन, आश्व० श्रौ० सू० १२।९ से गृहीत;
(५) सप्तम पंचिका (२-१२)-अग्निहोत्री के दोष और प्रायश्चित्त;
(६) ,, ,, (१३-१८) शुनःशेप की कथा;
(७) ७।१९ से ८।२८—राजसूय याग तथा पुरोहित के कार्य।

उपर्युक्त विवेचना से यह प्रतीत होता है कि पूरे ऐतरेय ब्राह्मण में कई तरह के प्रक्षेप हैं जो भिन्न-भिन्न कालों में आते गये। यह कहना बड़ा कठिन है कि ग्रन्थ को पंचिकाओं में कब विभक्त किया गया। यह सम्भव है कि मूलांश में (१-२४) भी जहाँ-तहाँ परिवर्तन आदि होते रहे हों। ऊपर से देखने में भले ही एक व्यक्ति का लिखा हुआ यह ग्रन्थ दिखलाई पड़े परन्तु सूक्ष्मतः विचार करने पर इसमें कई तरह की शैलियाँ मिलती हैं जिसमें इसका वर्गीकरण करना पड़ता है।

(३) ऐतरेय ब्राह्मण का समय

भारतीय वाङ्मय का काल निर्धारित करना बहुत कठिन है, इसमें भी वैदिक साहित्य का तो कुछ कहना ही नहीं। अथाह सागर में गोते लगाते जायँ, तल का पता नहीं लगेगा। निश्चित रूप से कोई कुछ नहीं कह सकता। दृष्टिकोणों के अन्तर के कारण वैदिक साहित्य के विभिन्न काल निर्धारित किये गये हैं। कोई भूगर्भशास्त्रीय प्रमाण देते हैं, तो कहीं ज्योतिःशास्त्रीय प्रमाण दिये जाते हैं, कोई भाषाविज्ञान के ऊपर ही सर्वस्व समर्पित कर रहे हैं। विभिन्न निष्कर्षों पर पहुँचने के कारण संशय रह जाता है जिसके कारण न तो इसमें किसी एक को प्रामाणिक मान सकते और न सबों का समूह ही प्रमाणकोटि में आ सकता है। यही नहीं, किसी प्रकार सभी मतों का समन्वय भी नहीं हो सकता। अध्यापक मैक्सम्यूलर की प्रदर्शित सरणि ने तो गणितज्ञों जैसा हिसाब लगा लिया है कि एक-एक काल के समाप्त होने में प्रायः २०० वर्ष लगते हैं—संहिताकाल २०० वर्ष (१३०० ई० पू० से ११०० ई० पू०),

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ब्राह्मणकाल (११००-९०० ई० पू०), आरण्यककाल (९०० से ७०० ई० पू०), उपनिषद्-सूत्र-काल ७००-५०० ई० पू०)। २०० वर्षों की कालसीमा का कोई आधार है या मनमाने ही ?

फिर प्रश्न है कि वैदिक वाङ्मय में काल का अर्थ दो प्रकार का है-- रचनाकाल और संकलनकाल। उदाहरण के लिए मन्त्रों की रचना दूसरे समय में हुई थी, उन्हें आधुनिक संहिता का रूप दूसरे समय में दिया गया था। यही बात ब्राह्मणों की है। हम ऊपर देख चुके हैं कि ऐतरेय ब्राह्मण की रचना में कितने विभिन्न तत्त्व मिलते हैं किन्तु इनका संकलन एक समय में ही हुआ था। ऐसी दशा में ऐतरेय ब्राह्मण के काल का निश्चयात्मक निरूपण करना दुस्साहस मात्र है। इतना ही कहा जा सकता है कि अन्य ग्रन्थों से तुलना करके उनका पूर्ववर्ती हम इसे मान सकते हैं। यदि भविष्य में कोई सर्वजन-मान्य उपाय (data) निकल सका तो उसके आधार पर इस ग्रन्थ को भी निश्चित कालसीमा में बाँध सकते हैं। यह अनुमान करना दोषपूर्ण है कि भाषा के आधार पर यह अमुक काल का है और भाषा इतने दिनों में बदल जाती है। सत्य यह है कि भाषा की गति एक स्थान में भी, एक ही जाति के द्वारा प्रयुक्त होने पर भी भिन्न-रूप धारण करती है--संहिताकाल को २०० वर्ष दें तो ब्राह्मणकाल भी २०० ही वर्ष का होगा, यह कहना असंगत है। भाषा का एक रूप कितने दिनों में बदलता है, कहना कठिन है। उदाहरण के लिए वैदिक प्रत्यय 'तवे' (गन्तवे, कर्त्तवे) बाद में संस्कृत में तुमुन् हो गया है, पर इसमें कितनी अवधि लगी होगी ? क्या इसके लिए मापदण्ड है ? दूसरी ओर मागधी के एक रूप अशोकीय-प्राकृत में यह प्रत्यय रह गया है, इसका क्या उत्तर है ?

यदि हम सामान्य रूप से भाषा की परीक्षा करें तो भी प्राचीनकाल के लिए कल्पनाएँ (Speculations) करना अंधकार में पड़ना है। हाँ, यदि हठ या पूर्वाग्रह हो तो दूसरी बात है। हर्ष का विषय है कि कुछ आधुनिक भारतीय विद्वान् वेदों के कालनिर्णय के लिए अपनी पद्धति का प्रयोग कर रहे हैं जिसमें भाषा, ज्योतिष, इतिहास आदि अनेक साधनों का उपयोग होता है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri,Funding: MIDF

ऐतरेय ब्राह्मण की रचना कौषीतकि और अन्य ब्राह्मणों से भी पूर्व हो चुकी थी क्योंकि बहुत सी सामग्रियाँ इसमें प्राचीनता का प्रदर्शन करती हैं। ऊपर के अध्याय से भी यह तथ्य भली भाँति सिद्ध होता है। पाणिनि के आविर्भाव-काल (७००-५०० ई०पू० ?) के पूर्व ही ऐतरेय और कौषीतकि लिखे जा चुके थे जैसा कि पाणिनि ने (५।१।६२) तीस और चालीस अध्यायों वाले ब्राह्मणों का उल्लेख किया है। यही नहीं पाणिनि की भाषा से ऐतरेय की भाषा अत्यन्त प्राचीन है—इसमें सन्देह नहीं है। इसलिए ऐतरेय के काल की निम्नतम सीमा प्रायः ५०० ई० पू० मिलती है।

दूसरी ओर यास्क के निरुक्त से भी हमें ऐतरेय की प्राचीनता का निर्देश मिलता है। यास्क ने कौषीतकि का उद्धरण दिया है किन्तु ऐतरेय का उद्धरण न देने पर भी कितने संदर्भों में उसकी अनुकृति करते प्रतीत होते हैं। उदाहरणार्थ :—

ऐ. ब्रा.	निरुक्त
१।१।१४ पञ्चर्त्तवो हेमन्तशिशिरयोः समासेन।	पञ्चर्त्तवः संवत्सरस्येति च ब्राह्मणम्, हेमन्तशिशिरयोः समासेन (४।२७)।
२।१७।४	सप्त च वै शतानि विंशतिश्च संवत्सरस्याहोरात्राः (४।२७)
३।८।१	यस्य देवतायै हविर्गृहीतं स्यात् तं मनसा ध्यायेद् वषट्करिष्यन् (८।२२)।

निरुक्त का १।१६ ऐतरेय ब्राह्मण के १।४।९ की अनुकृति ही है। निरुक्त (११।२९) में अनुमति और राका का तथा सिनीवाली और कुहू (११।३१) का जो विवरण प्रस्तुत है वह ऐत० के ७।११ से (कौषीतकि ३।१) लिया गया है। निरुक्त (८।४) में 'आप्रीभिः आप्रीणाति इति च ब्राह्मणम्' वास्तव में ऐत० के २।४।१ से लिया गया है।

निरुक्त की शैली ब्राह्मणों के समान ही है जिसे हम व्यास-शैली कह सकते हैं, सूत्रों में किसी बात को कहने की प्रणाली वहाँ नहीं (जैसा कि अन्य वेदाङ्गों में हम पाते हैं)। यास्क ब्राह्मण ग्रन्थों के अत्यन्त निकट थे जिससे ब्राह्मणों का अनुकरण उन्होंने खुलकर किया है। सूत्रकाल के बहुत पहले तथा ब्राह्मण-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

काल के थोड़ा ही बाद यास्क रहे होंगे। ऐतरेय ब्राह्मण की रचना निस्सन्देह इसके पूर्व हो गई थी।

आश्वलायन श्रौतसूत्र में कर्मकाण्ड की जो सुनिश्चित तथा विस्तृत प्रणाली दिखलाई गई है वह ऐतरेय में नहीं। अतएव इससे भी प्राचीनता की ओर दिशा-निर्देश होता है। आश्वलायन का सम्बन्ध शौनक से प्रतीत होता है और शौनक का उल्लेख बृहद्देवता में हुआ है (४।१३९)। पाणिनि के कुछ पूर्व इसका समय सुनिश्चित है।

पुनर्जन्म इत्यादि की दार्शनिक विचारधाराओं से शून्य होने के कारण भी इसे लोग बुद्ध के पूर्व ही का जानते हैं। यद्यपि यह अनुपस्थिति कोई प्रमाण नहीं, फिर भी गौतम बुद्ध के समय तक ऐतरेय का संकलन हो जाना इससे सूचित होता है।

राजनैतिक स्थिति भी इसे पुष्ट करती है। भरतवंशियों का राज्य मध्यदेश में था तथा जनमेजय की कीर्ति-पताका चारों ओर फहरा रही थी। भरत, कुरु-पंचाल, वश और उशीनर जाति वाले मध्यदेश के निवासी थे (८।१४)। भरतों ने सत्वतों पर आक्रमण किया था, मवेशी छीन लिये थे तथा वे यज्ञ-याग किया करते थे। भरत दौःषन्ति का अभिषेक हुआ था (८।२२)। जनमेजय परीक्षित को उनके पुरोहित तुर कावषेय ने अभिषिक्त किया तथा उनके लिए उचित पेय पदार्थ का निरूपण किया था (७।३४), असित मृगों की कथा भी उसे बतलाई गई थी (७।२७)। जनमेजय का समय वैदिक संहिताओं की समाप्ति का है। छोटे-छोटे राजाओं का भी वर्णन आया है जो सीमित क्षेत्रों के अधिपति थे। ऐतरेय में पहले-पहल आन्ध्र तथा अन्य जातियों का उल्लेख है जो आर्यसीमा के बाहर निवास करते थे। साथ ही कपिल और बभ्रु ऋषियों के गोत्रों का भी (यद्यपि भविष्य के लिए) उल्लेख है। इनके आधार पर ऐतरेय ब्राह्मण बहुत प्राचीन काल का सिद्ध हो जाता है। संभवतः संहिताओं के बाद ही यह हो।

अन्य ब्राह्मण ग्रन्थों के साथ तुलना करने से भी कुछ तथ्य हमें इस संबंध में प्राप्त होते हैं। गोपथ ब्राह्मण में इसकी जानकारी दिखलाई पड़ती है परन्तु गोपथ ब्राह्मण यास्क से अधिक प्राचीन है कि नहीं, अभी इसी में सन्देह

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

है[1]। तैत्तिरीय संहिता के ब्राह्मण भाग से भी ऐतरेय प्राचीनतर है। कीथ दोनों के कतिपय संदर्भों की तुलना करके उक्त निष्कर्ष पर पहुँचते हैं। इसी प्रकार पंचविंश ब्राह्मण (४।१।१) भी ऐतरेय के ऊपर (४।१७) निर्भर है। इसप्रकार अन्य ब्राह्मणों से प्रस्तुत ग्रन्थ प्राचीनतर प्रतीत होता है। जैमिनीय और शतपथ ब्राह्मण भी काफी सामग्रियाँ इससे लेते हैं। प्रो० वाकरनागल ने अपनी पुस्तक (Altindische Grammatik) के १।२० में यह सिद्ध करने की चेष्टा की है कि ऐतरेय कुछ ब्राह्मणों (जैसे–पंचविंश, तैत्तिरीय, जैमिनीय आदि) की अपेक्षा अर्वाचीन है, किन्तु इनके सारे तर्कों का खंडन कीथ करते हैं।[2]

'त्रयी विद्या' का प्रयोग यह सिद्ध करता है कि ऋक्, साम और यजुः ये तीन ही उस समय प्रचलित थे। अथर्ववेद से प्रस्तुत ब्राह्मण का परिचय विलकुल नहीं है। यज्ञ-यागादि में प्रयोग के लिए ये ही तीन वेद थे। कौषीतकि में आरुणि और श्वेतकेतु को आचार्यों के रूप में माना गया है, ऐतरेय में इनकी कोई चर्चा नहीं। अपेक्षाकृत यह प्राचीन है। शतपथ ब्राह्मण में कौषीतकि का बिना उल्लेख किये हुए एक स्थान पर (१०।४।१।१९) यज्ञ में सतरहवें पुरोहित (=सदस्य) का निषेध किया है। कौषीतकि-संप्रदाय में इसका विधान है जो हमें आपस्तम्ब (१०।१।१०,११) से प्राप्त होता है। कौषीतकि के संप्रदाय को ध्यान में रखते हुए ही शतपथ में निषेधात्मक वाक्य दिये गये हैं। इससे शतपथ ब्राह्मण भी ऐतरेय के बाद का सिद्ध होता है।

ज्योतिःशास्त्रीय दृष्टिकोण से भी इसके कालक्रम का विचार करना अपेक्षित है। कौषीतकि (१९।३) में लिखा है कि शीतसंपात (उत्तरायण का आरंभ, दक्षिणायन का अन्त, winter solstice) माघ मास की अमावस्या को होता है। वेबर साहब इस सीमा को ज्योतिष के आधार पर १८२० ई० पू० से ८६० ई० पू० तक की मानते हैं। कुछ विद्वान् नक्षत्रों के विचार को विदेशी मानते हैं तथा कितने तो इसकी प्रामाणिकता नहीं मानते। फिर भी

---

[1] देखिये—ब्लूमफील्ड, अथर्ववेद, पृ० १०२ तथा कीथ, तैत्तिरीयसंहिता १।१६९, १७०।

[2] Keith, Ṛgveda Brāhmaṇas, Introduction, p. 46.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रो० कीथ ८०० ई० पू० का समय ब्राह्मण-ग्रंथों की रचना के लिए दे सकते हैं। किन्तु यह समय उचित नहीं क्योंकि ब्राह्मणकालीन समाज और बुद्धकालीन समाज में इतना वैषम्य है जो उस युग के लिए हजारों वर्षों से कम की बात नहीं होगी। समय के लिए फिर भी निश्चित रूप से कुछ कहना कठिन है।

ऊपर हम देख चुके हैं कि ऐतरेय ब्राह्मण की रचना में विभिन्न तत्त्व हैं अतः उसके मूलांश की रचना के बाद ही उसका पिछला भाग संकलित हुआ होगा। भाषा के आधार पर जैसा कि ऊपर दिखला चुके हैं तथा आगे भी कहेंगे, पिछला भाग अन्य ब्राह्मण-ग्रंथों के काल में ही लिखा गया था। लिट् लकार का वर्णनात्मक प्रयोग इसका साधक है। हाँ, यह सही है कि कौषीतकि की रचना के बाद यह अंश जोड़ा गया था। राजसूय का वर्णन यजुर्वेद में भी है पर इस विषय में किसी तथ्य का संग्रह नहीं हो सकता क्योंकि विभिन्न परिवारों और शाखाओं में याज्ञिकों की प्रक्रियायें अलग-अलग थीं।

ऐतरेय ब्राह्मण की गाथाओं का काल कुछ और प्राचीन है। ये श्लोक-छंद में लिखी हुई हैं तथा वैदिक अनुष्टुप् छंद से अधिक परिष्कृत हैं। प्रायशः उपनिषदों की भाषा की ओर इनका झुकाव देखा जाता है। परन्तु गद्यांश की अपेक्षा ये प्राचीन हैं। फिर भी ऐसा कहने से काल का निर्णय नहीं हो पाता। परन्तु गाथायें गद्य की रचना के पूर्व ही किसी दूसरे प्रसंग में आ गई थीं उनका संकलनमात्र कर लिया गया है। न केवल भाषा की दृष्टि से अपितु प्रसंग और विषय-वस्तु का विचार करने पर भी हम इसी तथ्य पर पहुँचते हैं। ७।१३ में एक गाथा है—

किं नु मलं किमजिनं किमु श्मश्रूणि किं तपः।
पुत्रं ब्रह्माण इच्छध्वं स वै लोकोऽवदावदः॥

यहाँ 'ब्राह्मण' संबोधन-पद ध्येय है। नारद हरिश्चन्द्र को पुत्र का माहात्म्य समझा रहे हैं अकेला हरिश्चन्द्र सुन रहा है फिर 'हे ब्राह्मणो!' कहने की क्या जरूरत? सायण के अनुसार यदि यह भी सोचें कि सभा में और लोगों को भी सुना रहे हैं, फिर भी समस्या का हल नहीं निकलता, हरिश्चन्द्र के द्वारा

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri Funding: MIDE

पूछे गये प्रश्न का उत्तर यदि नारद आवेश में आकर सभी उपस्थित व्यक्तियों को संबोधित करके देने लगें—यह उचित नहीं जँचता। वस्तुस्थिति यह है ये गाथायें किसी अन्य समय में लिखी गई थीं। प्रसंगानुकूल देखकर यहाँ अपने-अपने स्थान पर जोड़ दी गई हैं। भाषा के विषय में आगे देखें कि गाथाओं की भाषा गद्य की भाषा से अधिक प्राचीन है।

(४) कर्मकाण्ड (Ritual)

ऐतरेय ब्राह्मण के कर्मकाण्ड का विस्तृत वर्णन आश्वलायन श्रौतसूत्र में किया गया है। इसमें १२ अध्याय हैं। दोनों के समयों में पर्याप्त अन्तर होने के कारण आश्वलायन में ऐतरेय की अपेक्षा अधिक कर्मकाण्ड का प्रयोग है क्योंकि विकसित होनेवाला विज्ञान कालक्रम से बढ़ता गया और उसकी वृद्धि उस समय तक होती गई जब तक कि उसे सूत्रों में उपनिबद्ध नहीं कर लिया गया। अतः ऐतरेय के कर्मकाण्ड का अध्ययन आश्वलायन सूत्र के आधार पर करने में काफी सावधानी रखनी पड़ती है यद्यपि दोनों एक ही शाखा के क्रमशः ब्राह्मण और श्रौतसूत्र हैं। उदाहरण के लिए आ० श्रौ० सू० के प्रथम तीन अध्यायों में दर्श-पूर्णमास यज्ञ, अग्निहोत्र, अग्न्याधान, चतुर्मास यज्ञ, प्रायश्चित्तों एवं पशुयाग का वर्णन है जिनका बहुत ही कम वर्णन ऐतरेय ब्राह्मण में है।

अब हम आश्वलायन श्रौतसूत्र तथा ऐतरेय ब्राह्मण के कर्मकाण्डों की संक्षिप्त तुलना करें। प्रथम तीन अध्यायों की तो तुलना ऐतरेय के २।१–१४; ५।२६–३१, तथा ७।२–१२ से अत्यन्त कठिनाई से हो सकती है। अन्य अध्यायों का विचार अपेक्षित है—

आश्वलायन सूत्र	*ऐतरेय ब्राह्मण*
चतुर्थ अध्याय, सोम सवन के दिन की तैयारियाँ	प्रथम पंचिका तथा द्वि० पं० १–१८।
पंचम अध्याय, अग्निष्टोम	२।१९ से ३।४८
६।१ उक्थ्य	३।४९, ५०
६।२ षोडशिन्	४।१–४

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

आश्वलायन सूत्र	ऐतरेय ब्राह्मण
६।४–६ अतिरात्र	४।५–११
६।७–१० प्रायश्चित्त और मृत्यु या रोग के समय के कर्म	×
६।११–१४ अग्निष्टोम की समाप्ति के कर्म	३।४७, ४८।
७।१ सामान्य विचार	×
७।२–४ चतुर्विंश	४।१२, १४।
७।५–९ अभिप्लव पडह इत्यादि	४।१३, १५, १६।
७।१०–१२ पृष्ठ्य पडह	४।१३, १५, १६,२७-५।१५
८।१–४ छठे दिन होता और होत्रक के शस्त्र	षष्ठ पंचिका।
८।५ अभिजित् तथा स्वरसामन्	४।१९।
८।६ विषुवत्	४।१९–२२।
८।७ विश्वजित् तथा स्वरसामन्	४।१९।
अभिप्लव के रूप।	×
समूढ रूप में छन्दोमस्	×
८।८ व्यूढ द्वादशाह	४।२७।
८।९–११ छन्दोमस्	५।१६–२१।
८।१२ दसवाँ दिन	५।२२–२५।
८।१३ दसवें दिन की समाप्ति के कर्म।	×
८।१४ पाठ के नियम।	×
९–१२ अध्याय, अहीन और सत्र	×

कौषीतकि ब्राह्मण के साथ तुलना करने पर ज्योतिष्टोम के केवल ४ रूपों की समानता प्राप्त होती है। वे हैं—अग्निष्टोम, उक्थ्य, षोडशिन् तथा अतिरात्र।

होत्रकों के तीन उक्थ-स्तोत्रों और तीन उक्थ-शस्त्रों से उक्थ्य बनता है। सोमसवन के एक दिन पूर्व अग्नि और सोम के लिए दी गई सामान्य बलि के अतिरिक्त इन्द्र और अग्नि को एक बकरे की बलि पड़ती है। सोमसवन के दिन अग्नि को भी बलि मिलती है। तृतीय सवन के समय उक्थ्य पात्र की भी तैयारी होती है। षोडशिन् में इन्द्र के लिए एक भेड़े की भी बलि होती है और स्तोत्र तथा शस्त्र के साथ एक और पात्र तैयार किया जाता है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अतिरात्र में तीन बार में बारह स्तोत्रों तथा शस्त्रों का पाठ रात में होता है, साथ-साथ सवन (सोम चुआना) भी होता रहता है। प्रातःकाल में सन्धिस्तोत्रों का पाठ (सामवेद २।९९-१०४) होता है। फिर होता आश्विन शस्त्र का पाठ करता है। अतिरात्र में षोडशिन् को अन्तर्भूत करने के प्रश्न पर विवाद है क्योंकि दोनों तरह के विधिवाक्य हैं—अतिरात्रे षोडशिनं गृह्णाति, नातिरात्रे षोडशिनं गृह्णाति। शांखा० श्रौतसूत्र (९।१।१०), आश्व० श्रौ० सू० (५।१।१), ऐत० ब्राह्मण (३।४१) कात्यायन श्रौ० सू० (९।८।५)—ये प्रथम पक्ष में हैं जब कि पंचविंश ब्राह्मण (२०।१।१) दोनों पक्षों में है। किन्तु ऐतरेय (४।१) में षोडशिन् को द्वादशाह का एक अंग माना गया है, पृष्ठ्य षडह के चौथे दिन (अतिरात्र के बाद) षोडशिन् विहित है। उक्थ्य भी उसी का (पृष्ठ्य षडह का) अंग है। अतिरात्र में सरस्वती के लिए भी बलि दी जाती है।[१]

वाजपेय और अप्तोर्याम का संक्षिप्त विवरण ऐतरेय ३।४१ में तथा आश्वलायन (९।११) में भी है। अतिरात्र के अतिरिक्त इसमें चार स्तोत्र और शस्त्र होते हैं (अप्तोर्याम)। वाजपेय बृहस्पतिसव के पूर्व की विधि है (बृहस्पतिसव का ब्राह्मणों से उसी प्रकार का संबंध है जिस प्रकार राजसूय का क्षत्रियों से। इसका पता ब्राह्मण ग्रंथों को नहीं है या कम से कम उनके द्वारा स्वीकृत नहीं। जनसामान्य में इसका प्रचलन था। कई सूत्रग्रन्थों में उक्थ्य, षोडशिन् और अतिरात्र का ही वर्णन है। टीकाकारों का कहना है

---

[१] अतिरात्र के अनन्तर अत्यग्निष्टोम संस्था का विवरण देना अपेक्षित है क्योंकि विवरणक्रम में यह पाँचवीं संस्था पड़ती है। ज्योतिष्टोम की कुल ७ संस्थायें होती हैं—अग्निष्टोम, उक्थ्य, षोडशिन्, अतिरात्र, अत्यग्निष्टोम, वाजपेय, अप्तोर्याम। इनमें अग्निष्टोम के १२ स्तोत्र, १२ शस्त्र, ४ स्तोम; उक्थ्य में १५ स्तोत्र, १५ शस्त्र, ४ स्तोम; षोडशिन् में १६ स्तोत्र, १६ शस्त्र, ४ स्तोम; अतिरात्र में २९ स्तोत्र और शस्त्र, ४ स्तोम; अप्तोर्याम में ३३ स्तोत्र + शस्त्र, ९ स्तोम। इन सबों का सुन्दर विवेचन पं० चिन्नस्वामिशास्त्री कृत यज्ञतत्त्वप्रकाश नामक ग्रंथ में हुआ है (प्रकाशनकाल १९५३, चौखम्बा से प्राप्य)। अधिक ज्ञान के लिए वहीं देखें।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कि अन्य विधियों की अनुपस्थिति से सिद्ध होता है कि इन विधियों के आधार पर कोई दूसरी विधि प्रयुक्त नहीं थी।

अग्निष्टोम के वर्णन में ही (सोमयाग के प्रतिनिधि के रूप में) ब्राह्मण-ग्रंथ का विपुलांश लगा हुआ है। इसमें एक दिन से अधिक लगते हैं। इसमें सर्वप्रथम *द्वादशाह* यज्ञ है जिसके लिए १२ दिन लगते हैं। इनमें प्रथम और अन्तिम दिनों में अतिरात्र होता है। शेष दस दिनों में ६ दिन पृष्ठ्य षडह, ३ दिन छन्दोमस् और दसवें दिन अग्निष्टोमसंस्था होती है। यह द्वादशाह ही अहीन (= २ से लेकर १२ दिनों में होने वाली) संस्थाओं तथा सत्रसंस्थाओं (१२ दिनों से अधिक दिन वाली) का आदर्श है। वार्षिक यज्ञों का आदर्श *गवामयन* है जिसमें ३६१ दिन लगते हैं। इसमें तीन खंड होते हैं—६ मासों का पूर्वपक्ष, विषुवान् दिवस, तथा ६ मासों का उत्तरपक्ष। इसका विवरण निम्नरूप से है—

दिन के कार्य	*दिन संख्या*	
प्रायणीय अतिरात्रसंस्था	१	
चतुर्विंश स्तोम वाली उक्थ्य संस्था	१	
प्रथम मास—४ बार अभिप्लव षडह	२४	३०
१ पृष्ठ्य षडह	६	
द्वितीय मास— ,,	३०	
तृतीय ,, — ,,	३०	
चतुर्थ ,, — ,,	३०	
पंचम ,, ,,	३०	
षष्ठ ,,—३ बार अभिलव षडह	१८	
१ पृष्ठ्य षडह	६	
अभिजित् नामक दिन	१	
३ स्वरसाम नामक दिन	३	
	१८०	
विषुवान् दिवस	१	

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri Funding: MIDF

उत्तर पक्ष में पूर्वपक्ष की संस्थायें विलोम क्रम से होती हैं। द्वादश मास में ३ बार अभिप्लव षडह (१८ दिन), आयुष्टोम (१), गोष्टोम (१), दशरात्र (१०), महाव्रत (१) तथा अतिरात्र (१) की संस्थायें होती हैं। इसके वर्णन में श्रौतसूत्रों में अपना-अपना क्रम है जिससे कुछ अंतर पड़ जाता है। इस प्रकार गवामयन सत्र में ३६१ दिन लगते हैं। इसके अन्तर्गत दो प्रकार के षडह आते हैं। वेद में सोमयाग के समूह विशेष के रूप में तीन तरह के प्रदर्शित हैं—पृष्ठ्य षडह, अभिप्लव षडह तथा अभ्यासङ्ग्य षडह। ये तीनों छह-छह दिनों में ही होते हैं परन्तु स्तोम, संस्था और सवन का इनमें अन्तर रहता है। (देखें—यज्ञतत्त्वप्रकाश, पृ० १३०–१)।

सोमयाग के वर्णन के अनन्तर राजसूय-याग का उपक्रमण किया गया है। इसका वर्णन और कहीं नहीं। केवल आश्वलायन श्रौतसूत्र में (९।३) शुनःशेपोपाख्यान के अंतिम भाग में दिये गये नियमों का यथावत् उद्धरण दिया गया है, शांखायन श्रौतसूत्र में (१५।१७-२७) शुनःशेप की कथा प्रायः इसी रूप में है। इसके अलावे और कहीं राजा के लिए पेय पदार्थ बनाना, उसका अभिषेक करना या उसकी विजय के लिए मंत्रप्रयोग का नाम भी नहीं। राजसूय की सामान्य विशेषताओं के विषय में ऐतरेय बिल्कुल मौन है, भले अश्वमेध के साथ इसका संबंध दिखलाया गया है। अश्वमेध करने वालों की सूची शतपथ ब्राह्मण (१३।५।४) से बिल्कुल मिलती है (ऐत० ८।२१-२३) इससे मालूम होता है कि राजाओं के यशोविस्तार का मूल कारण अश्वमेध ही था, अश्वमेधियों का राजसूय से संबंध होना गौण स्थान रखता था ? अभिषेक की विधियाँ प्रक्षिप्त हैं जो संकलयिता की बुद्धि पर आधारित हैं।

इसी राजसूय के प्रसंग में शुनःशेप का उपाख्यान आया है जो अभिषिक्त राजा को सुनाने के लिए है। आश्वलायन श्रौतसूत्र (९।३-४) में राजसूय की कुछ विधियाँ प्रदर्शित हैं। उनके अनुसार यह यज्ञ फाल्गुनी पौर्णमासी के पूर्व पवित्र अग्निष्टोम से आरंभ होता है। इसके बाद एक वर्ष तक चातुर्मासिक कृत्य संपादित किये जाते हैं। फिर अभिषेचनीय और दशपेय होते हैं। उसी दिन मरुत्वतीय के शुनःशेप की कथा सुनाई जाती है जिसे राजा अपने

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

बाल-बच्चों के साथ सुनता है। फिर सात दिनों तक संसृपेष्टियाँ होती हैं और पुनः दशपेय होता है, तब वैशाख शुक्लपक्ष में केशवपानीय (एक प्रकार का अतिरात्र) और आषाढ़ के शुक्लपक्ष में व्युष्टि नामक दो दिनों की संस्था होती है—पहले दिन अग्निष्टोम तथा दूसरे दिन सभी स्तोमों के साथ अतिरात्र। एक मास बाद 'क्षत्रस्य धृति' (एक प्रकार का अग्निष्टोम) होती है। इस तरह इसमें १ वर्ष से कुछ अधिक समय लगता है।

श्रौतसूत्रों में प्रायः कुछ अंतर के साथ यह वर्णित है। शांखायन श्रौतसूत्र (१५।१२-१६) में केशवपानीय के पूर्व सौत्रामणी का विधान भी किया है। बौधायन श्रौतसूत्र (१२) में शुनःशेप के उपाख्यान का श्रवण करना ओदन पकाने के समय (१२।१५-१६) विहित है। आपस्तम्ब (१८।१९।१०) तथा कात्यायन (१५।५।१) श्रौतसूत्र भी इसका वर्णन करते हैं।

ऐतरेय ब्राह्मण की विधियाँ अभिषेचनीय दिवस के क्रियाकलापों तक ही सीमित हैं। इससे अध्वर्युशास्त्रीय विधियों (राजसूय की) का एक नया रूप यहाँ प्राप्त होता है। अभिषेक का ही एक नाम पुनरभिषेक दिया गया है (८।५) तथा क्षत्रिय के पेय का विवरण दिया गया है जो वास्तव में अभिषेचनीय से ही संबद्ध है। फिर अभिषेक का एक वैकल्पिक रूप प्राप्त होता है (८।१२-२०), अभिषिक्त राजाओं का वर्णन, और तब पुरोहित के कृत्यों के साथ यह प्रकरण समाप्त होता है।

यह कहना ठीक है कि ऐतरेय से ही अध्वर्युशास्त्रों ने शुनःशेप का आख्यान लिया है, सभी अध्वर्यु का उल्लेख करते हैं तथा आपस्तम्ब तो इस आख्यान में १०० या १००० ऋचाओं की सत्ता भी स्वीकार करते हैं। १००० मंत्रों का अभिप्राय यही है कि कथा की आवृत्ति १० बार होती होगी। यद्यपि ऐतरेय का वर्णन (८।५-११) उतना पूर्ण नहीं है जितना आध्वर्यव परिवार के शास्त्रों में, फिर भी इस तथ्य से किसी कालगत सम्बन्ध का अन्वेषण करना कठिन है।

इस प्रकार ऐतरेयोक्त कर्मकाण्ड का अध्ययन तुलनात्मक ढंग से करने का प्रयास किया गया है। स्थान और समय के अनवकाश ने संक्षेप कराने को विवश किया है। इससे यह न समझें कि इसका कर्मकाण्ड थोड़ा है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वस्तुतः अब तो श्रौतयाग होते ही नहीं कि कर्मकाण्ड की व्यावहारिक उपयोगिता समझी जाय। केवल सिद्धान्त की दृष्टि से इनका अध्ययन हो सकता है। यद्यपि ये सूत्रों में उपनिबद्ध हैं परन्तु इनका साहित्य बहुत व्यापक है। समय ही बतलायेगा कि इनका पुनरुद्धार सम्भव है कि नहीं।

(५) भाषा और शैली[1]

कोई भी भाषा—साहित्यिक या लौकिक—स्थिर नहीं रह सकती, कालक्रम से भाषा की भाग्य-पंक्ति भी परिवर्तमान होती रही है—यही उसका विकास है। जो ध्वनियाँ, रूप, शब्दार्थ और वाक्य-क्रम एक समय में दिखलाई पड़ते हैं, दूसरे समय वे नष्ट हो जाते हैं तथा उनके स्थान पर दूसरे रूप प्रस्तुत मिलते हैं। ऐसा भी संभव है कि सभी रूप लुप्त नहीं होते तथा कुछ रूप अपने ऊपर पड़ने वाले सभी आघातों को सहकर भी यथापूर्व बने रहते हैं।

यही कारण है कि जो वैदिक भाषा संहिताकाल में प्राप्त होती है ब्राह्मण-काल तक आते-आते उसमें स्पष्ट परिवर्तन के चिह्न दृष्टिगोचर होते हैं। हाँ, कुछ रूप रह भी गये हैं। ऐतरेय ब्राह्मण में भी वैदिक भाषा का एक ऐसा रूप प्राप्त होता है जो संहिताओं की भाषा से पलायन तथा संस्कृत-भाषा की ओर किंचित् झुकने के प्रति उन्मुख-सा है। इसमें भी भाषा के दो रूप मिलते हैं जो ऐतरेय ब्राह्मण की रचना के दो पृथक्-पृथक् कालों के द्योतक हैं। तदनुसार ऐतरेय-ब्राह्मण के मंत्रों या गाथाओं (पद्य-भाग) की भाषा इसके गद्यभाग की भाषा से बहुत पृथक् है।

---

[1] प्रस्तुत प्रकरण में Harvard Oriental Series से प्रकाशित (१९२०) स्व० प्रो० कीथ के ऐतरेयकौषीतकि-अनुवाद की भूमिका के सम्बद्ध परिच्छेद का सारांश दिया जाता है, यद्यपि अपनी ओर से शुनःशेपोपाख्यान पर विशेष ध्यान रखते हुए विवेचन करने का भी प्रयास है। उक्त पुस्तक के प्रकाशकों का मैं बहुत कृतज्ञ हूँ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

(क. मन्त्रों की भाषा)

मंत्रों से हमारा अभिप्राय ऐतरेय ब्राह्मण के पद्य भाग से है जिसके दो प्रकार हैं—एक तो ऋग्वेद से उद्धृत किये गये मंत्रों के एकपादात्मक संकेत, दूसरे इसका अपना पद्यात्मक-भाग जिसे गाथा कहते हैं। ऋग्वेद की भाषा का तो अलग व्याकरण-ग्रन्थों में विचार हुआ ही है, प्रस्तुत स्थल में हम गाथा की भाषा पर ही अपना अध्ययन-क्रम आरम्भ करें। चूँकि यह अंश इतना कम है कि इसका सांगोपांग अध्ययन नहीं हो सकता इसलिए अपनी सुविधा के लिए इसके दो खंड हम रखें—क्रिया-पद और संज्ञापद।

क्रियापद (*तिङन्त* Verbal Forms)—गाथाओं में क्रियापदों के इतने विचित्र रूप मिलते हैं कि हमें इनकी प्राचीनता मानने को बाध्य होना पड़ता है। लट् लकार के रूपों में *स्मसि* (शु० ६।१), *विद्मसि* (शु० ६।४), *स्थन* (शु० ५।९), तथा *शेरे* (शु० ३।२) विशेष ध्येय हैं। ये रूप विशुद्ध वैदिक हैं क्योंकि ऋग्वेद के काल की भाषा के द्योतक हैं। इनमें प्रथम दो उत्तम पुरुष बहुवचन में मस्-प्रत्यय के स्थान में मसि-प्रत्यय से बने हुए रूप हैं, तीसरा तङ् (मध्यम पुरुष बहुवचन) के स्थान में 'थन' से बना हुआ रूप है। यद्यपि सायण ने इसका पद-विभाग करके 'स्थ + न' करने की चेष्टा की है परन्तु वहाँ अर्थ की खींचातानी भर है। 'शेरे' में अत् प्रत्यय (झ के स्थान में) का ही लोप हो गया है। इसी प्रकार *चराति* (शु० ६।३) भी अपने साथ लट् लकार की कई क्रियाओं से लिये हुए रहने के कारण वर्तमान का ही रूप माना गया है। ऑफ्रेख्ट (Aufrecht) ने छन्द की सुविधा के लिए दीर्घ माना है, पर कीथ के अनुसार भविष्यत् की भी संभावना हो सकती है—चराति चरतो भगः = भ्रमणशील व्यक्ति का भाग्य चलता रहे। इसी उपाख्यान में (५।६) *ज्ञपया* का प्रयोग भी संशयात्मक है। 'ज्ञपय (:)' के स्थान में 'ज्ञपय' किया गया मालूम पड़ता है। वैदिक 'तनप्'—प्रत्यय के उदाहरण में *शृणोतन* (शु० ५।९) को दे सकते हैं। *वृञ्जीयम्*, *अवपद्येयम्* (आत्मने० > परस्मै०)—(विधिलिङ्) तथा *अजायेथः* (लङ्)—के समान असाध्य रूप भी प्राप्त होते हैं।

लुङ् लकार के प्रयोगों में *अकर्त* (शु० ६।२), *अदर्शुः* (५।२) तथा

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

संभवतः *अलप्सत* (५।२) भी वैदिक संहिताकाल के हैं। शांखायन श्रौतसूत्र में 'अदर्शुः' के स्थान पर लौकिक-रूप 'अद्राक्षुः' दिया गया है। लुट् लकार का भी एक प्रयोग *'उपेता'* (शु० ६।४) के रूप में है। लिट् लकार का रूप *'शुश्रुम'* (शु० ३।१) है जो उत्तम पुरुष में व्यवहृत नहीं होता। पाणिनि ने इसका वहाँ निषेध भी किया है। पूर्ण अस्वीकृति या चित्तविक्षेप के अर्थ में ही लिट् उत्तम पुरुष का प्रयोग होता है। सन्नन्त के रूपों में *'दिदासिथ'* (८।२१) मिलता है जिसका रूप शतपथ ब्राह्मण में 'मन्द आसिथ' है।

सुबन्त [Nominal Forms]—वैदिक रूप *'जनासः'* (ऐ० ब्रा० ५।३०।६) प्रथमा बहुवचन में मिलता है। गाथाओं में *'गाथिनाः'* के साथ-साथ *'गाथिनाम्'* का भी रूप (शुन० ६।६) प्राप्त है जो 'गाथिनानाम्' होना चाहिए लेकिन यह मालूम होता है कि षष्ठी बहु० का प्रत्यय 'आम्' था, नुट् (ह्रस्वनद्यापो नुट्) की कोई आवश्यकता नहीं थी। शुनःशेपोपाख्यान में *'संज्ञानानेषु वै ब्रूयात्'* आया है जिसके लिए शांखायन श्रौतसूत्र में 'ब्रूयाः' पाठ है, सप्तमी का रूप यहाँ पर स्थिर करना बहुत कठिन है—'संज्ञानम्' रूप की स्थिति ठीक थी।

(ख. गद्य की भाषा)

ऐतरेय ब्राह्मण का विपुलांश गद्य में ही है जिसकी भाषा पद्य से अर्वाचीन है। गद्य में बहुत से स्थल ऐसे भी हैं जो ऋग्वेद के मंत्रों के उद्धरण के अनन्तर उनकी व्याख्या के रूप में हैं। ऐसे स्थलों में जो वैदिक शब्द हैं उन्हें हमें अपने ध्यान में नहीं रखना है क्योंकि वे तो व्याख्यात्मक हैं, ब्राह्मण की अपनी भाषा उनसे पृथक् है। उदाहरणार्थ—'कृधी न ऊर्ध्वाञ्चरथाय जीवसे' की व्याख्या इन्हीं शब्दों में की गई है केवल 'चरथाय' के स्थान में 'चरणाय' कर दिया गया है (२।२।२१)। इससे 'कृधी' के रूप को हम ब्राह्मणकालिक मानें, यह ठीक नहीं। हाँ, यह कहना संगत हो सकता है कि 'कृधी' रूप उस समय लोग समझते होंगे। गद्य का अधिक भाग पाणिनि व्याकरण के दृष्टिकोण से ठीक ही उतरता है। जहाँ कहीं पार्थक्य है वह

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

नियत प्रतीत होता है। परम्परा से भी कुछ दोष आ गये हैं जिसके लिए पाण्डुलिपि के लेखकों को ही दोषी माना जा सकता है।

सन्धि—यद्यपि अपने पाठ में मैंने सन्धियाँ तोड़ दी हैं परन्तु मूलतः पूरे ऐतरेय ब्राह्मण तथा इसके प्राप्त पाठ का भी हमें यहाँ विचार करना है जिसमें निम्नांकित विशेषतायें प्राप्त होती हैं। ये विशेषतायें संस्कृत में प्राप्त नहीं हैं।

(१) औ के बाद उ ऊ को छोड़कर कोई भी दूसरा स्वर आने पर आव् होता है; उ ऊ आने पर आ होता है—*अश्विना उदजायताम्*, *अश्विनावाश्नुवाताम्* (४।८); *अश्विना ऊचतुः* (७।१६), *द्वा उभयोः* (८।५) इत्यादि। तात्पर्यंतः पाणिनि के 'लोपः शाकल्यस्य' (८।३।१९) का नियम कुछ स्थानों में नियमित रूप से नहीं मिलता।

(२) आ के साथ ऋ की सन्धि होने पर ह्रस्व अ हो जाता है, ऋ भी रहता है। *प्रथम ऋक्* (३।३५); *पितऋभून्* (६।१२); *यथ ऋषभम्* (६।१८, २१, २२); *यथ ऋषि* (२।४), अ + ऋ का अर् होता है किन्तु कभी कभी ऋ भी बच जाता है—*च ऋषयः* (१।२७; २।१, १३; ३।२५; ६।१७, ३२), *अस्य ऋचम्* (३।१७), *नाम ऋक्* (३।२३)। गाथा में भी (७।१७) *भरत ऋषभ* लिखा है किन्तु इसे 'भरतर्षभ' पढ़ना चाहिए।

(३) ल के स्थान में र के प्रयोग (रकारीकरण rhotacism) भी यहाँ मिलते हैं जिनका भांडार हमें ऋग्वेद में प्राप्य है। तदनुसार उलूकम् > *उरूकम्* (२।७), बहुल > *बहुर* (२।१८), लोमानि > *रोमाणि* (२।९), शिथिलानि > *शिथिराणि* (३।३१)।

(४) निपातों (Particles) के अंतिम स्वर को ऋग्वेद-जैसा ही दीर्घ कर देने की भी परम्परा है—*अती नु तम्* (३।४२), *व्यू मुञ्चन्ते* (६।२३); बीच में दीर्घ करने का उदाहरण *परीशेष* (७।५) है।

शब्दरूप—(१) अकारान्त शब्द का वैदिक रूप—'*स्तोमेभिः*' (४।१५) मिलता है जो गद्य के लिए अप्रत्याशित है।

(२) अन्य ब्राह्मणग्रंथों की तरह आकारान्त शब्द की पंचमी-षष्ठी में सामान्य प्रत्यय 'याः' के अतिरिक्त 'यै' प्रत्यय भी है—ष० *अपूतायै* (७।२७)।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कौषीतकि में ऐसे रूप बहुत हैं। पाणिनि के अनुसार इसे सुप् का व्यत्यय कहेंगे कि चतुर्थी के प्रयोग तत्तत् विभक्तियों में हुए हैं। ६।१५ में तृतीया के अर्थ में *जगत्काम्या* रूप है जो जगत्काम्यया का संक्षिप्त किया हुआ रूप है। यही दशा शुनःशेपोख्यान की *अशनया* <अशनायया की है।

(३) इ ई से अंत होने वाले शब्दों की पंचमी-षष्ठी में 'यै' प्रत्यय बहुधा मिलता है—*अभिभूत्यै* रूपम् (८।२), *गायत्र्यै* च जगत्यै च (४ २७), *तत्यै* (६।२०) इत्यादि।

(४) ऐ० ब्रा० (३।१०) में पेशस् और पेश दोनों को प्रातिपदिक मानकर रूप दिये गये हैं। इससे प्राचीनकाल में शब्दों को व्यंजनान्त करके उनके द्विविध रूप चलाने की प्रणाली प्रचलित थी। ऐसे ही शतायु और सहस्रायु (६।३३) शब्दों के प्रयोग हैं।

(५) नकारान्त शब्दों की सप्तमी के एकवचन में प्रत्यय का लोप करना साधारण बात है—*समानेऽहन्* (३।४७), चतुर्विंशेऽहन् (७।२३); परमे व्योमन्, शीर्षन्, आत्मन्, सामन् आदि (४।३१, ३२) के साथ अहनि भी मिलता है।

(६) विशेषण की उत्तमावस्था (superlative) के कभी-कभी दो प्रत्यय एक साथ ही रहते हैं—*बलिष्ठतम* (३।४६); बलिष्ठ का प्रयोग भी है (७।१६)।

(७) संख्यावाचक विशेषणों में त्रयस्त्रिंशत्या (५।३२), षट्त्रिंशतमेकपदाः (७।१) के रूप ध्यातव्य हैं। 'चतुःषष्टिं कवचिन आसुः' (३।४८) की संगति असंभव है। द्वितीयान्त का रूप कैसे हुआ ?

(८) सर्वनाम के रूपों में *'युवम्'* (शु० युवाम्) २।२२ तथा *'अस्माक'* की प्राप्ति है (कः स्वित्सोऽस्माकास्ति वीरः ७।२७)।

क्रियारूप—प्रधानतया त्वष्टा की निरुक्ति में दिये गये *ताष्टि* (२।४), *द्योति* (५।२१), *परिद्योति* (६।३२) के रूप अदादि-गण में प्रदर्शित होने के कारण विशेष ध्येय हैं।

(१) लङ् लकार में अट् का अभाव ऐ० ब्रा० में बहुधा पाया जाता है—*ईक्षत* (३।२१), *न्युब्जन्* (७।३०), *अन्ववयुः* (६।१४), *प्रजनयन्*

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

(२।३८), *प्रत्युत्तम्नुवन्* (४।१८), *संस्थापयन्* (२।३१), *विहरन्त* (२।३६)। कुछ तो रूप कई लकारों के भद्दे मिश्रण से बने हैं यद्यपि उनके संशोधन की चेष्टा हुई है—*उच्चक्रामत्* (अट् विहीन लिट् + लङ्) इसे 'उच्चक्राम' पढ़ने का बहुत आग्रह है। इसी प्रकार '*वाचि कल्पयिषन्*' (३।३०) को अवाचिकल्पयिषन् (अव + अचिकल्पयिषन्) करने का आग्रह है। *उदप्रपतत्* (३।३२) में अट् का स्थान अशुद्ध—उपसर्ग के पूर्व अट् है।

लङ् में सभी धातुओं को भ्वादि-गण में लाने की प्रवृत्ति प्रायः देखी जाती है—*उपप्रायत* (३।३९), *अभ्यहनत्* (४।३), *अशयत्* (३।१५)। ग्रह् के ह् को वेद जैसा ही भ् हो गया है—*प्रत्यगृभ्णन्* (६।३५), *संगृभ्णात्* (३।२६)। अपाघ्नत के स्थान पर *अपाहत* (४।२५) का प्रयोग है।

(२) विधिलिङ् में भी विभिन्न धातुओं को भ्वादि-गण में लाने की प्रवृत्ति देखते हैं। उदाहरण के लिये *प्राणेत्* (२।२१), *प्रतिरुन्धेत्* (६।३४) आदि रूप हैं। भ्वादि गण में विशेषतया णिजन्त होने पर ए के स्थान में ई का प्रयोग देखते हैं—*कामयीत* (३।४५), *व्याह्वयीत* (३।१९) इत्यादि। आशीर्लिङ् का प्रयोग *भक्षीष्ट* (७।१८) में है।

(३) लेट् लकार भी ऐतरेय ब्राह्मण में मिलता है—*तिष्ठासि* (२।२), *प्रजानाथ* (१।७), *जुहवाथ* (५।३२), *असत्* (२।८७ तथा अन्य कई स्थानों पर), अतिक्रामात् (१।२४), प्रतितिष्ठात् (४।२५), *गच्छान्* (२।१२), शयासै (२।२), *संगच्छातै* (१।२४), संतिष्ठातै (८।९) इत्यादि।

(४) लुङ् लकार के भी रूप अधिक मिलते हैं। उनमें कुछ विशेष ध्येय हैं—अयाङ्‌सि (२।४०), अज्ञासम् (६।३४), प्रत्यरौत्सि (६।३४), असक्थाः (६।३३), *अज्ञत* (७।१४), अद्रुत्ताः (८।२३)। अजग्रभैषम् (६।३५) तथा पर्यग्रहैषम् (६।२४) के प्रयोग दुस्साध्य हैं जिनमें ई (ईट्) के स्थान में ऐ का आगम हुआ है।

(५) प्रथम पाँच पंचिकाओं में लिट् का प्रयोग अधिक नहीं है। 'सं··· विद्रे' (१।१७), सं-जभ्रुः (१।१८), अपिनह्युः (<नेहुः—भोटलिङ्क), *निनियोज* (७।१६) आदि रूप अप्रचलित हैं। दाधार, बीभाय, दीधाय आदि रूप बहुत बार आये हैं। अन्य ब्राह्मणों में तथा ऐतरेय की षष्ठ पंचिका में भी लिट् लकार का प्रचलन पुष्कल मात्रा में है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

(६) शतृ-प्रत्यय के रूपों में *शोचत्यः* (३।३६), *क्दत्यः* (६।२७, ३२), *सिषासत्यः* (४।१७) के साधन अप्रचलित हैं। क्वसु कानच् के रूपों में चक्रुषे (५।२४), निःशानः (७।१६) आदि हैं। दूसरा प्रयोग तो अशुद्ध है। *ससृजानम्* (४।२८), *विविदानः* (५।२८) *विजिग्यानाः* (४।३१) *अभिषिषिचानः* (८।६) आदि अन्य उदाहरण हैं।

(७) तुमुन् का प्रयोग खूब है, 'तोः' (तोसुन्) वाला रूप भी पर्याप्त है, तवै के केवल तीन उदाहरण हैं—*एतवै* (५।१५) तथा *स्तर्तवै* का दो बार (२।६, ३।७)।

(८) प्रत्ययान्त धातुओं में णिजन्त के उदाहरणों में *अवद्योतयति* (अथर्व और कौषी०) है, नामधातु के उत्पाथयति, नक्षयन्ति, न्यूङ्खयति आदि प्रयोग हैं। सन्नन्त भी बहुत हैं—लीप्सितव्यम् (? २।३) जिज्यूषितः (७।२९)—ये दो अनियमित रूप हैं। एक रूप '*प्रबिनावयिष्यन्ति*' है जिसमें सन् और णिच् दोनों हैं। एक रूप लेट् में *आलुलोभयिषात्*' है।

(९) उपसर्ग वैदिक भाषा की तरह पृथक् भी हो सकते हैं।

समास, शब्दावली तथा शब्दरचना—समासों की रचना प्रायः संस्कृत की भाँति ऐतरेय ब्राह्मण में हुई है। इस युग तक 'अन्योन्य' और 'एकैक' जैसे समासों का भी पूरा प्रचलन शुरू हो गया था। च्वि प्रत्यय से बने शब्द भी पूर्णतः क्रम में आ गये थे, कभी-कभी वे व्यवहित भी हो सकते थे जैसे—'मुष्टी वै कृत्वा' (१।३)। ऐब्रा० ७।१५ में 'अशनयापरीतः शब्द का प्रयोग है जिसके लिए 'अशनायापरीतः' (तत्पुरुष समास) या 'अशनायया परीतः की आशा की जा सकती है। परन्तु समवर्णलोप (haplology) से ही—दो यकारों में एक के लोप से—यह संभव प्रतीत होता है। ८।२६ में 'मनुष्यराज्ञाम्' (शुद्धरूप—मनुष्यराजानाम्) अप्रचलित है। २।९ में 'यत्किंचित्कम्' जैसे समास का भी प्रयोग है।

व्याकरण के कतिपय पारिभाषिक शब्द भी प्राप्त होते हैं। ऐब्रा० ४।२९, ३१ तथा ५।१ में काल के तीनों भेद इस प्रकार हैं—*करिष्यत्*, *कुर्वत्* तथा *कृत*। कौषीतकि ब्राह्मण में कृत के स्थान में चकृवत् है तथा तीनों की व्याख्या भी है। ५।३२ में 'ओम्' के तीन खंड—अ, उ, म—किये गये हैं। *अक्षर* (syllable जैसे क, की) तथा *वर्ण* (letter जैसे क्, अ प्) का प्रयोग

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

भी पाया जाता है। ५।१ में *पुनर्वृत्तम्* और *पुनर्निनृत्तम्* शब्दों के प्रयोग हैं। पहले का अर्थ है शब्दों या शब्दखंडों की आवृत्ति; दूसरे का अर्थ है अनुप्रास जिसमें समान ध्वनियों का आवर्तन होता है। बहुवचन के अर्थ में 'बहु' शब्द आया है। ६।३२ में 'प्रग्राहम्' तथा ३३ में 'पदावग्राहम्' है।

किसी धातु से युक्त होने के अर्थ को द्योतित करने के लिए विभिन्न प्रक्रियाओं का आश्रय लिया गया है जैसे (१) कभी-कभी क्त प्रत्ययान्त धातु का उल्लेख—*रतवत्* (५।१, १२ रम् धातु से युक्त), *पर्यस्तवन* (५।१) (२) अन्य विधियाँ—वृषन्वत् (४।३१), पिबवत् (४।२९)।

वाक्य-रचना—ऐतरेय ब्राह्मण की वाक्य-रचना के विषय में डेलब्रुक (Delbrück) ने अपनी जर्मन भाषा की पुस्तक अल्टीण्डिशे सिंटैक्स (Altindische syntax) में विधिवत् विवेचना की है। यह पुस्तक अभी तक अँगरेजी में भी नहीं आई है।

(१) कारकों की विधि संस्कृत से अधिक भिन्न नहीं है। हाँ, कर्ता के उदाहरण में—'अश्वः श्वेतो रूपं कृत्वा' (६।३५) है जहाँ विशेषण संज्ञा के पश्चात् है। ऐसी विधि लैटिन में खूब पाई जाती है। एक स्थान पर कर्म के बदले कर्त्ता का प्रयोग है—इन्द्रो वा एताभि *महान्* आत्मानं निर्मिमीत (५।७)। एक और उदाहरण अंग्रेजी की तरह का है—*पशुर्वै* नीयमानः, *स मृत्युं प्रापश्यत्* (२।६)। यहाँ पशुः और स दोनों कर्त्ता है, संज्ञा के होने पर भी सर्वनाम है। अंग्रेजी में—(Ram, he never spoke a lie.)।

(२) चतुर्थी का प्रयोग बहुधा तादर्थ्य में (क्रिया के) हुआ है, कभी-कभी दो संप्रदानों का प्रयोग भी एक साथ हुआ है—सर्वस्मा एव शान्त्यै (२।३४), तस्मै ज्यैष्ठ्याय अतिष्ठन्त (४।२५), *अस्मै ज्यैष्ठ्याय* कल्पध्वम् (७।१८ की गाथा में)। पंचमी का प्रयोग ७।१७ की गाथा में √वृ (वरण करना to select, to prefer) के साथ हुआ है—गवां त्रीणि शतानि *त्वमवृणीथा मदङ्गिरः*।

(३) षष्ठी के प्रयोग प्रायः प्रकरण को शुरू करने के लिए हुए हैं, कहीं-कहीं स्वामित्व-प्रदर्शन के लिए भी (वस्तु का उल्लेख बिना किये ही) होता है—न दीक्षितस्याश्नीयात् (२।९।६)। शेष षष्ठी का प्रयोग *'तस्य ह* शतं दत्वा' (७।१५) में लगता है, पर है यहाँ सम्प्रदान के अर्थ में।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri Funding: MIDF

(४) सप्तमी का प्रयोग यहाँ समय का अन्तर दिखलाने के लिए हुआ है—पश्चा षष्ट्यां वा वर्षेषु (४।१७।५)। भाव के अर्थ में सप्तमी मिलती है, षष्ठी नहीं।[1]

(५) उपसर्गों का प्रयोग कर्मप्रवचनीय के रूप में तथा स्वतंत्र भी मिलता है। आन्तम् (३।४५) तथा आजरसम् (३।१९) ये दोनों समस्त पद हैं। अधि का प्रयोग पंचमी के साथ हुआ है—अग्नेरेवाधि गृहपतेरादित्यं काष्ठामकुर्वत (४।७।६)।

(६) सर्वनामों में 'स' का भाव प्रायः नष्ट हो गया है तथा यह केवल निपात के अर्थ में रह गया है। 'स यः'''विद्यात्कथां तं वेदेरुत्थापयन्ति (७।२८), स य तादृक्तत् (५।३१)। कः स्विदस्ति वीरः (७।२७) में प्रश्नवाचक सर्वनाम है। 'कश्चित्' का प्रयोग सर्वत्र 'कोई' के अर्थ में हुआ है।

(७) पाणिनि के द्वारा प्रदर्शित मार्ग से ब्राह्मणों की भाषा में वाच्य का बहुत अन्तर है। अप + √हन् का आत्मनेपद में प्रयोग साधारण बात है। 'आह्वयते' का प्रयोग पुकारने के अर्थ में होता है। आ + √पद् कर्तृवाच्य भविष्यत् में बनता है लेकिन लङ् और लुङ् में इसका प्रयोग भाववाच्य में ही करते हैं। 'संपिबस्व' का प्रयोग तृतीया के साथ किया गया है। इस प्रकार कुछ व्यत्यय हैं।

(८) ऐतरेय ब्राह्मण के मूलांश (१-५ पंचिका) में तो लङ् का प्रयोग वर्णन करने के लिए खूब हुआ है, पर पिछले भाग में इसका स्थान लिट् ले लेता है। लुङ् का प्रयोग आसन्न भूत के अर्थ में हुआ है। लेकिन इसके कई विचित्र प्रयोग हुए हैं जैसे—अदर्शुः (७।१७)। यह गाथा का उदाहरण है। लिट् के फिर भी दो रूप हैं—वर्तमान काल तथा विवरण प्रस्तुत करने का अर्थ। साधारण रूप में (जैसे—बभूव, दधुः) तो यह है ही, आम् के साथ भी इसके अनेक प्रयोग हैं जैसे—निर्वापयामास (२।३६), ईक्षांचक्रे इत्यादि। शुनःशेप के उपाख्यान में भी इसके कई प्रयोग हैं। भविष्यत् काल के लिए लुट् का अत्यधिक व्यवहार हुआ है। उदाहरणार्थ 'युष्माँश्च दायं म उपेता' (७।१८) लें। लेट् का प्रयोग बहुत कम रह गया। रह

[1] पाणिनि—यस्य च भावेन भावलक्षणम् (२।३।३७), षष्ठी चानादरे (३८)

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

भी तो वार्तालाप में प्रयुक्त है। 'यच्चैनमेवं वेदाति तु तमर्जाति' (३।४२)—यह एकमात्र अपवाद है। अन्य संदर्भों में यह इच्छार्थक या अनुज्ञार्थक बन जाता है। (१।२४।५) में इसका प्रयोग सम्बन्धवाचक सर्वनाम के साथ हुआ है—संगच्छातै यः···अतिक्रामात्···यः···आलुलोभयिषात्। एक उपाधि-वाचक (Conditional) वाक्यखंड में भी इसका प्रयोग हुआ है—यदि च तिष्ठासि यदि च शयासै धत्तत् (२।२।५)। अन्य लकार सामान्य रूप में ही प्रायः हैं।

(९) तुमुन्नर्थक (Infinitive) प्रत्ययों में तुमुन् का प्रयोग अकामयत, वेद, अर्हति, दधृषतुः क्रियाओं के साथ तथा शक् धातु के साथ हुआ है। तोसुन् का प्रयोग 'ईश्वर' शब्द के साथ कई बार हुआ है—ऐतोः, परैतोः, अभ्युपैतोः, अनृणाकर्त्तोः, जनितोः, प्रवदितोः इत्यादि। स्तर्तवै और एतवै का प्रयोग भी हुआ है।

(१०) निपातों के प्रयोग बड़े मनोरंजक हैं। 'इव' का अर्थ 'एव' (ही) है, 'पृष्ठत इवाग्नीध्रं कृत्वा' (१।३०); 'वा' (Optionally) का अर्थ 'वै' (Emphatic) है; 'न्वै' का प्रयोग प्रायः हुआ है। 'इति नु' के स्थान में 'इति न्वै' आता है। मूल अंश (१-५ पंचिका) में 'वाव' का प्रयोग है, जब कि पिछले अंश में 'वै' आता है। 'वै' के साथ 'ह वा अपि' भी व्यवहृत हुआ है। 'ह' का 'स्म' के साथ प्रयोग बहुधा ऐतिहासिकता का प्रदर्शन करता है।

(११) प्रधान वाक्यखंडों के साथ परतंत्र वाक्यखंडों का संबन्ध प्रायः साधारण ही है। 'यत्' के साथ 'तत्' आया है। कहीं प्रधान खंड पहले है, कहीं पीछे। तुलनार्थक वाक्यखण्डों का संबंध 'यथा-तथा' से जुड़ा रहता है। 'इति' का प्रयोग जो किसी की उक्ति के बाद होता है, खूब हुआ है। निषेध दिखलाने के लिए पूरे वाक्य को 'न, नेत् या मा' में समेट लिया जाता है। कभी-कभी जोर देने के लिए उक्ति वाले वाक्यखण्ड के स्वरों को दीर्घ कर दिया जाता है—'विहृता३म् स्तोत्रा३म् अविहृता३म् इति' (६।३४)।

(१२) शब्दों का क्रम ऐसा है कि प्रायः उद्देश्य विधेय के बाद ही आया है, यद्यपि इसके भी अपवाद हैं। उद्देश्य को अपने सहकारियों से

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पृथक् करने के लिए कई स्थानों में यद् का भी व्यवहार किया गया है जैसे— 'संस्था वा एष यद् अनुवषट्कारः' (२।२८)।

(१३) पूरे ग्रन्थ में कहीं भी स्वरांकन नहीं है । संभव है पहले स्वरांकित हो, पर बाद में कालक्रम से स्वरों की रक्षा नहीं हुई । पंचविंश ब्राह्मण के विषय में तो हमें सूचना भी है कि शतपथ ब्राह्मण की ही तरह यह कभी स्वरांकित था; किन्तु कुमारिल के समय में स्वरांकन समाप्त हो गया ।

शैली—ऐतरेय ब्राह्मण की रचना प्राचीन गद्य में है। यद्यपि गद्य का प्रथम रूप हमें यजुर्वेद संहिताओं में प्राप्त होता है फिर भी शैली की दृष्टि से ऐतरेय-ब्राह्मण का गद्य उससे कुछ अधिक अर्वाचीन नहीं लगता। दोनों की अभिव्यंजना-प्रणाली प्रायः एक है। दोनों के विषय जैसे यज्ञपरक हैं वैसे ही उनके कहने का ढंग भी। फिर भी ऐतरेय की कुछ अपनी विशेषतायें हैं जो ब्राह्मण होने के नाते ही हैं। विभिन्न यज्ञों के वर्णनों के समय, उद्धरण देने के समय अथवा दैनिक कृत्यों के निरूपणों में शैली बहुत सरल हो जाती है। छोटे-छोटे वाक्यों का बहुधा प्रयोग होता है जो सुघटित होते हैं। समास तो प्राचीन गद्य का शत्रु है। अतः शब्दों की विचित्रता और पारिभाषिक पदावली की बाधा यदि नहीं पड़े तो ऐसे स्थलों को समझना कोई बड़ी बात नहीं है।

आख्यान (Narration) में भी सरल शैली ही दिखलाई पड़ती है उदाहरण के लिये शुनःशेपोपाख्यान लें जिसमें छोटे वाक्यों की शय्या बड़ी मनोरम प्रतीत होती है। त्रिपिटक के समान जहाँ-तहाँ वाक्यों की आवृत्तियाँ हुई हैं जैसे वरुण को हटाने के समय एक ही तरह के ५-६ वाक्य, इन्द्र के द्वारा श्रमण माहात्म्य का वर्णन किये जाते समय 'चरैवेति' ह मा ब्राह्मणोऽवोचदिति...' इत्यादि का एकाधिक बार प्रयोग हुआ है। ये आवृत्तियाँ समूचे ब्राह्मण में भरी हैं।

क्लिष्ट शैली—जिसमें समासों का प्रयोग नहीं, शब्दों की लम्बी योजना की जाती है—प्रायः उन स्थलों में मिलती है जहाँ विचार-पक्ष प्रबल होता है किसी विधि की उपयोगिता बतलाई जाती है या निरुक्तियाँ प्रदर्शित होती हैं

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ब्राह्मण ग्रन्थों की क्लिष्टता परकालिक संस्कृत ग्रन्थों की क्लिष्टता नहीं है बल्कि व्याकरण के उपादान जैसे कर्ता, क्रिया आदि की एक लम्बी रेखा बनाकर बड़े-बड़े वाक्यों का मेला लग जाना ही क्लिष्ट शैली का नमूना है। फिर भी वे ऐसे नहीं कि दुर्बोध हों। किसी बात को कहने के लिये दो प्रकार की शैलियाँ ब्राह्मण में सर्वत्र हैं—कभी-कभी वर्णनात्मक या व्यास-शैली जिसमें किसी बात को समझाकर कहा जाता है, अपने स्थान पर सुशोभित रहती है, सूत्र शैली या समास शैली का प्रयोग विषय को दुरूह कर देता है परन्तु ऐसे स्थानों में या तो उदाहरणों की प्रचुरता है या तुरत बाद में व्याख्यान किया जाता है जिससे सूत्र शैली अस्तप्राय हो जाती है। कुछ भी हो, ब्राह्मण की शैली अत्यन्त सुबोध, सरल तथा प्रसन्न है जिसके तल में जाने पर अर्थ की छटा भली-भाँति दृष्टिगोचर होती है।

(६) हरिश्चन्द्रोपाख्यान : एक अध्ययन

शुनःशेपोपाख्यान या हरिश्चन्द्रोपाख्यान ऐतरेय ब्राह्मण का एकमात्र आख्यान है जिसके पाठ का विधान अभिषेक के बाद किया गया है। यह कहना कदाचित् अनुचित न होगा कि संसार की सर्वप्रथम पूर्ण कथाओं में एक यह भी है। कथा बहुत मनोरञ्जक तथा प्रभावोत्पादक है।

इक्ष्वाकु वंश में उत्पन्न हरिश्चन्द्र नामक एक राजर्षि थे। राजाओं के यहाँ जिस प्रकार कवियों, संतों की भीड़ लगी रहती है, उसी प्रकार उनके यहाँ भी पर्वत और नारद ये दो ऋषि रहते थे। सन्तान-सुख से वंचित रहने के कारण हरिश्चन्द्र ने नारद से पुत्र के महत्त्व के विषय में प्रश्न किया—ज्ञानी और अज्ञानी सभी तो पुत्र की कामना करते हैं, आखिर इस पुत्र में क्या रखा है? नारद तो नारद ठहरे। उन्होंने पुत्र के माहात्म्य का जो वर्णन करना शुरू किया तो एक समा बँध गया, श्लोकों (गाथाओं) का स्तूप खड़ा कर दिया। धड़ल्ले से दश गाथायें उगल दीं, चाहे वे प्रासंगिक हों या अप्रासंगिक। उनका नारदत्व (नार = ज्ञान, द = देने वाले) सिद्ध हो गया। इन गाथाओं में कई बहुत सुन्दर कविता का आदर्श उपस्थित करती हैं—

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

शश्वत्पुत्रेण पितरोऽत्यायन्बहुलं तमः।
आत्मा हि जज्ञ आत्मनः स इरावत्यतितारिणी ॥

पुत्र से पिता लोग अन्धकार अर्थात् कठिनाइयों को पार करते हैं, आत्मा (शरीर) से शरीर की उत्पत्ति होती है, वह आत्मा (शरीर = पुत्र) अन्न से भरी हुई भवसागर को पार करने वाली नाव है।

अन्नं ह प्राणः शरणं ह वासो रूपं हिरण्यं पशवो विवाहाः।
सखा ह जाया कृपणं ह दुहिता ज्योतिर्ह पुत्रः परमे व्योमन् ॥

कितना सुन्दर रूपक बाँधा गया है। उस पर भी इतनी अप्रस्तुत वस्तुओं के साथ वर्णन करना और भी रमणीक हो गया है—संसार के बड़े-बड़े अनुभव इसमें भरे पड़े हैं। संसार में पुत्र ही सर्वश्रेष्ठ भोग है। यहाँ तक कि—

यावन्तः पृथिव्यां भोगा यावन्तो जातवेदसि।
यावन्तो अप्सु प्राणिनां भूयान्पुत्रे पितुस्ततः ॥

पिता को पुत्र से इतने सुख मिलते हैं जितने किसी को पृथ्वी से, अग्नि से या जल से भी नहीं मिलते। स्मरणीय है कि प्रकृति के उक्त तीन तत्वों से अधिक सुखद या उपकारी कोई क्या होगा, हमारा रहना ही कठिन हो जायगा। फिर भी पुत्र इन सब सुखों की अपेक्षा अधिक है। भारत में पुत्रोत्पादन पर इतना अधिक जोर दिया गया था।

इन सभी गाथाओं की रचना विशेषकर इसी प्रसंग के लिये हुई थी, यह नहीं कहा जा सकता। व्याख्यान शैली में कही गई इतनी गाथायें प्रसंगानुकूल नहीं हैं। प्रश्न का उत्तर एक-दो गाथाओं में ही है, लेकिन 'जाया' की निरुक्ति, पुत्रोत्पत्ति की विधि, पशुओं का मातृ-समागम आदि विषयों की गाथायें भी आयी हैं जिनसे प्रतीत होता है कि दूसरे प्रसंग में ये पढ़ी गई होंगी। 'ब्रह्माणः' शब्द के विषय में हम ऊपर कह चुके हैं।

अस्तु, नारद जी गाथायें गाकर विरत हो गये, सो बात नहीं है। वे अनुभवी महर्षि हरिश्चन्द्र के प्रश्न का भाव समझ गये। बात यह थी कि हरिश्चन्द्र की १०० पत्नियाँ थीं, पर पुत्र एक भी नहीं—पुत्रियाँ रही होंगी नहीं तो नारद बाबा 'कृपणं ह दुहिता' का प्रयोग ही क्यों करते? स्पष्ट था कि राजा ने पुत्र-प्राप्ति का उपाय भी साथ-साथ पूछा था। नारद का बतलाया

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उपाय यही था कि वरुण की प्रार्थना करो—'मुझे पुत्र हो जाय तो उसके द्वारा मैं आपका यज्ञ करूँ।' वाह रे उपाय ! जिस पुत्र की महिमा गाते नारद अघाते नहीं उसी की बलि का भी उपाय बतलावें क्योंकि यज्ञ तो बलि के बिना सम्भव नहीं। पर चारा ही क्या था ?

इसके दो पंक्तियों के बाद ही उसे रोहित नाम का पुत्र हुआ। पुत्र उत्पन्न होते ही वरुण दौड़ते हुए आकर बोले—तुम्हें तो पुत्र हो गया, इसकी मुझे बलि दो। हरिश्चन्द्र इस स्थिति का सामना करने के लिये पहले से ही तैयार था और उसके पास अनेकानेक बहाने उन्हें टालने को पड़े थे। उसने उत्तर दिया कि जब तक पशु दस दिनों का नहीं होता, यज्ञ के लायक नहीं होता क्योंकि गर्भ के मल को दूर होने में इतने दिन लगते हैं। चलो, कम से कम दस दिनों से तो निश्चिन्त हुए। वरुण बेचारा जल का देवता, स्वभाव से ही शान्त, सर्वसहिष्णु ! उन्होंने स्वीकार किया, पर दस दिनों के बाद आकर फिर वही आदेश दुहरा दिया। इस बार हरिश्चन्द्र ने पशु के दाँत उगने का बहाना बताया और वह वरुण के क्रोध को जागृत करने के लिये पहली सीढ़ी पर चढ़ा। इसके बाद के बहानों में पशु के दाँत गिरना, उनका फिर उगना और क्षत्रिय का अपनी रक्षा के लिये योग्य (सांनाहुक) होना थे। इसमें हरिश्चन्द्र की भारी चालाकी थी कि उसका पुत्र भाग जाय और वरुण से मुक्त हो जाय।

पर वरुण जैसे धैर्यवान् देवता बहुत कम ही होंगे। तभी तो इतने बार लौटाये जाने पर भी वे हताश नहीं हुए और फिर अपनी बात उन्होंने दुहराई। हरिश्चन्द्र इस बार कोई बहाना नहीं कर सका, शायद वरुण बहुत शीघ्रता में आ गये हों (Surprise visit) और हरिचन्द्र को बहाना सोचने का मौका नहीं मिल सका। उसने अपने पुत्र को बुलाकर अपनी समस्या बतलाई। पुत्र भी अब जवान हो गया था, वह भला अपनी बलि क्योंकर स्वीकार करता ? तुरत धनुष लेकर जंगल में घूमने चला गया।

रोहित के निकल भागने से वरुण भी विचलित हो उठे और उन्होंने हरिश्चन्द्र को ही पकड़ा। उसे जलोदर रोग हो गया। रोहित ने जब इसे सुना तो घर आने का विचार किया। उसके पास आदमी के रूप में इन्द्र

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

आये तथा घर न जाकर वन में भ्रमण करने का ही उपदेश करने लगे। 'चरैवेति' का अमूल्य उपदेश रोहित के हृदय में बैठ गया। इसका प्रभाव एक वर्ष तक रहा। दूसरे वर्ष घर जाने के समय इन्द्र ने फिर उपदेश दिया। इस प्रकार वह कुल मिलाकर छह वर्ष तक वन में भ्रमण करता रहा। भ्रमण का माहात्म्य दिखलाने वाली गाथायें बहुत ही मार्मिक हैं जैसे—

चरन्वै मधु विन्दति चरन्स्वादुमुदुम्बरम्।
सूर्यस्य पश्य श्रेमाणं यो न तन्द्रयते चरन्॥

वास्तव में भ्रमण करने वाले व्यक्ति स्थिर रहने वाले की अपेक्षा अधिक अनुभवी, स्वस्थ तथा सद्गुण-सम्पन्न होते हैं। पर्यटन या देशाटन का महत्त्व कौन स्वीकार नहीं करेगा? केवल 'देशाटनं पण्डितमित्रता च' वाला श्लोक ही नहीं, प्रत्युत जोश में आकर एक कवि तो कहते हैं कि—

सैर कर दुनिया की गाफिल[1] जिन्दगानी फिर कहाँ।
जिन्दगानी गर मिली तो नौजवानी फिर कहाँ॥

भ्रमण से रोहित को लाभ हुआ ही। वन में उसने एक भूखे ब्राह्मण-परिवार को पाया जो सौयवसि अजीगर्त्त का था। उसके तीन पुत्र थे—शुनःपुच्छ, शुनःशेप, शुनोलांगूल। रोहित ने कहा कि हे ऋषि! आपको मैं एक सौ गायें देता हूँ तथा अपने स्थान पर बलि देने के लिए इनमें किसी एक को खरीदना चाहता हूँ। पिता ने बड़े बेटे को बचाना चाहा, माता ने छोटे को। अब बचा बेचारा विचला—उसी को बेचने का विचार दोनों ने किया।

निदान शुनःशेप को खरीदकर रोहित घर लौटा और अपने पिता से बोला—तात, मैंने अपने स्थान पर इसे बलि के लिए खरीद लिया है। छह वर्षों से जलोदर रोग से परेशान पिता परम प्रसन्न हुए और तुरत वरुण के पास जाकर अपने पशु की बलि लेने को बोले। वरुण ने सारी घटना सुनकर कहा कि क्षत्रिय से अच्छा ब्राह्मण ही है। उसके बाद राजसूय यज्ञ का वर्णन वरुण ने हरिश्चन्द्र से किया और बतलाया कि अभिषेक के दिन पुरुष-पशु का आलम्भन (बलिदान) करना।

---

[1] भूला हुआ, पथभ्रान्त।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वरुण के उपदेश के अनुसार राजसूय-यज्ञ की तैयारी की गई। विश्वामित्र होता बने, जमदग्नि अध्वर्यु, वसिष्ठ ब्रह्मा और अयास्य उद्गाता बने। पुरोहितों के निर्वाचन के बाद अभिषेक के दिन बलि-पशु को स्वीकार किया गया, उसके अंग-प्रत्यंग देख लिये गये। यज्ञ में उसे स्वीकृत करने के बाद बाँधने की समस्या थी। अब खूँटे में उसे बाँधे कौन? नरमेध जैसे भीषण-कर्म में सहायता देनेवाले भी कोई नहीं मिले, वास्तविक क्रिया करना तो दूर रहा। ऐसी परम्परा तो थी ही नहीं कि लोग उसमें अभ्यस्त हों। तब, अजीगर्त ही तैयार हुआ। क्षुधा की ज्वाला जो न कराये! बुभुक्षा के बाद लोभ! अजीगर्त और उसकी पत्नी, दो बच्चे! उनके उदर-पालन की समस्या बड़ी बिकट थी—फिर अनिवार्य आवश्यकता की पूर्ति के बाद सुखद आवश्यकताएँ (Comfortable wants) आयँगी ही; उनके लिए जघन्य कर्म करना भी क्यों न पड़े। पुनः सौ गायों पर वह बाँधने के लिए तैयार हुआ। बँध जाने पर यज्ञ की और भी विधियाँ सम्पन्न की गईं जिन्हें शुनःशेप बेचारा तटस्थ होकर देखता या भोगता रहा।

अब मारने का प्रश्न खड़ा हुआ! पुरोहितों ने अपनी आँखें उठाईं। सारी सभा सन्न! कोई स्वीकार करनेवाला नहीं। इस लाभ वाले मौके को अजीगर्त क्यों छोड़ता? फिर एक सौ गायों की माँग उसने की। राजा तो किसी प्रकार यज्ञ सम्पन्न करना चाहते थे, सौ गायों की उन्हें क्या चिन्ता? सौ गायें पाकर वह अपनी तलवार की धार तेज करते हुए निकट आया। अब शुनःशेप से न रहा गया। उसने देखा कि पशु के समान ये मेरी हत्या कर डालेंगे, अब देवताओं की शरण में ही जाना चाहिए।

देवता लोग इतने चतुर थे कि प्रार्थी (शुनःशेप) को सबके पास दौड़ा दिया और सबों की प्रार्थना उससे करा दी। यह दशा कुछ-कुछ आधुनिक सरकारी कार्यालयों के समान है। पहले शुनःशेप प्रजापति की प्रार्थना करने लगा, प्रार्थना सुनकर प्रजापति ने उसे अग्नि के पास प्रार्थनार्थ भेजा, अग्नि ने प्रार्थना सुनकर सविता के पास, सविता ने वरुण के पास, वरुण ने फिर अग्नि के पास, अग्नि ने विश्व-देवों के पास और विश्वदेवों ने इन्द्र के पास भेजा जिन्होंने उसे आध्यात्मिक स्वर्णरथ दिया। इन्द्र ने भी अश्विनों की ओर भेज

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

दिया जिन्होंने उषा के पास प्रार्थना करने का आदेश दिया। शायद सभी देवताओं की आँखें इसी नायिका की ओर लगी थीं। तो, उषा की स्तुति शुनःशेप ने तीन ऋचाओं से की। एक-एक ऋचा का उच्चारण होते-होते उसके बन्धन कटते गये। अन्तिम ऋचा का उच्चारण होते ही एक ओर शुनःशेपः मुक्त हो गया, दूसरी ओर हरिश्चन्द्र नीरोग हो गया—अजीगर्त मुँह देखता रह गया।

अकस्मात् शुनःशेप विजयी हो गया और लोगों की आँखों पर चढ़ गया। पुरोहितों ने कहा कि जो हुआ सो हुआ, अब तुम ही आज के यज्ञ का संपादन करो। भाग्य की बात! कहाँ बलि पड़ रही थी, और अब वही अध्यक्ष-पद पर प्रतिष्ठित हो गया। यह है स्तुति का माहात्म्य!

शुनःशेप ने जल्दी से सोमरस निकालने की विधि देखी (आविष्कृत की)। 'ददर्श' का प्रयोग बतलाता है कि अब वह ऋषि हो गया (√दृश्=देखना)। सोम चुलाकर उसे लकड़ी के कलश में ढाल दिया तथा हरिश्चन्द्र द्वारा उसका स्पर्श कर लेने पर अवभृथ (यज्ञ की समाप्ति सूचक विधि—स्नान) की विधि की। फिर आहवनीय अग्नि की स्थापना करके अपना भार उतार दिया।

यज्ञ समाप्त करने पर शुनःशेप विश्वामित्र की गोद में (पास में) बैठ गया। अजीगर्त को यह बात अच्छी नहीं लगी; उसने विश्वामित्र से शुनःशेप को लौटा देने की प्रार्थना की। विश्वामित्र ऐसे मेधावी और प्रतिष्ठित ऋषि को अपना पुत्र बनाने का लोभ संवरण न कर सके। उन्होंने झट उत्तर दिया कि इसे मुझे देवताओं ने दिया है (√रा = देना)। उसी दिन से वह देव-रात (दत्त) वैश्वामित्र (विश्वामित्र का पुत्र) बन गया। कापिलेय (कपिल के गोत्र में उत्पन्न) तथा बाभ्रव (बभ्रुगोत्रीय) उसी की सन्तानें हैं। इसके बाद पिता-पुत्र संवाद होने लगा। पिता (अजीगर्त) ने कहा कि तुम जन्म से आंगिरस (अंगिरा के गोत्र में उत्पन्न) तथा अजीगर्त की सन्तान के रूप में प्रसिद्ध कवि (ऋषि) हो, अपने पितामह के सूत्र से पृथक् न होकर फिर हमारे ही यहाँ चले आओ। हम दोनों (पति-पत्नी) तुम्हें बुला रहे हैं।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

शुनःशेप अजीगर्त का पुत्र होकर फल भोग चुका था। अब वह फिर उसी परिवार में जाने का स्वप्न भी नहीं देख सकता था। दूसरे, वह बिका हुआ भी था—पिता का उस पर अब वैध अधिकार भी नहीं था। उसने तुरत उत्तर दिया—'हे अंगिरा गोत्र पर गर्व करनेवाले, तुमने मेरे लिए तीन सौ गायें ग्रहण की हैं, लोगों ने तुम्हें हाथ में छुरी लिए हुए भी देखा है, ऐसी बात शूद्रों में भी आज तक नहीं पायी गई (कि नरहत्या करे या अपने पुत्र पर ही छुरी चलावे)।' तब अजीगर्त ने आँसू बहाते हुए उत्तर दिया कि हे पुत्र, अभी तक उस कर्म से मेरा हृदय जल रहा है, वे तीन सौ गायें मैं तुम्हें ही सौंप दे रहा हूँ, मेरे परिवार को उनसे कोई मतलब नहीं है। अपने पुत्र को बचपन में अलग करके, बाद में पुत्र के द्वारा अर्जित विशाल सम्पत्ति और प्रतिष्ठा को देखकर आदर्श पिता की वह उक्ति वास्तव में कपट से भरी हुई होती है। शुनःशेप ने छूटते ही जवाब दिया कि जो एक बार पाप करता है, वह दूसरी बार भी वैसा कर सकता है, शूद्र का न्याय (सादृश्य) तुमसे हट नहीं सकता—तुमने असंधेय (बिना जवाब का) काम किया है।

विश्वामित्र अभी तक पिता-पुत्र के विवाद को तटस्थ होकर सुन रहे थे, 'असंधेय' शब्द सुनते ही चौकन्ने हो गये और उसकी पुष्टि की—जिस समय अजीगर्त छुरी से काटने जा रहा था, उस समय वास्तव में बड़ा भयंकर लग रहा था। उसका पुत्र तुम मत बनो, मेरा ही पुत्र बन जाओ।

शुनःशेप ने सामाजिक दृष्टिकोण से आपत्ति की कि मैं जन्म से आंगिरस हूँ, फिर आपका पुत्र कैसे बन सकता हूँ। विश्वामित्र ने ऐसे ऋषि को अपनी ज्येष्ठ संतान बनाने का आश्वासन दिया और कहा कि मेरे दैव—उत्तराधिकार का भी तुम उपभोग करना। शुनःशेप कोई मूर्ख नहीं था। 'यो ध्रुवाणि परित्यज्य' का पाठ भी पूरा पढ़े हुए था, उसने वचन ले लिया कि अपने पुत्रों की राय से उनका सौहार्द भी मुझे दिलाते हुए यह काम आप करें। ऐसा करने से पुत्रों में एकमति रहेगी और मुझसे वे लोग सद्व्यवहार रखेंगे।

उसके कथनानुसार विश्वामित्र ने अपने एक सौ एक पुत्रों को बुलाकर पूछ ही तो लिया। उनके पुत्रों में मधुच्छन्दा मध्यम था—विश्वामित्र उसी से पहचानते थे कि कौन पूर्वार्द्ध में है कौन उत्तरार्द्ध में अर्थात् मधुच्छन्दा

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

से कौन बड़ा है और कौन छोटा। पूर्वार्द्ध में अवस्थित पुत्रों ने इसे ठीक नहीं समझा कि अन्य कुल का लड़का हमलोगों में ज्येष्ठ पद पा ले। बाहरी व्यक्ति को अध्यक्ष बनाने की इच्छा भला कौन रखेगा? उन्होंने विरोध किया ही था कि विश्वामित्र के शाप से उन्हें सीमा के बाहर अनार्य देश में भागना पड़ा और अन्ध्र, पुलिन्द, पुण्ड्र, शबर, मूतिब जैसी जातियों में जा मिले। चोर-डाकू भी ये बन गये।

अपने बड़े भाइयों की यह दशा देखकर मधुच्छन्दा और अन्य भाइयों के होश हवा हो गये। वे पिता की बात तुरत मानने को तत्पर हो गये। विश्वामित्र प्रसन्न होकर अपने इन पुत्रों की स्तुति करने लगे। शुनःशेप को विश्वामित्र के परिवार में दैविक और ज्ञान-सम्बन्धी दोनों प्रकार के अधिकार प्राप्त हुए। इस प्रकार यह आख्यान समाप्त हुआ।

आख्यान के अन्त में इसके पाठ की विधि और माहात्म्य का वर्णन है। चूँकि इस आख्यान का सम्बन्ध राजसूय से है, अग्निष्टोम से नहीं, अतः इसका पाठ राजसूय-याग में अभिषेक के बाद करने का विधान है। होता इस आख्यान का पाठ अभिषिक्त राजा को सुनाता है। सोने के आसन पर बैठकर वह पाठ करता है, सोने के ही आसन पर बैठकर एक दूसरा ब्राह्मण प्रतिगरण (हुँकारी भरना) करता है। ऋचाओं के पाठ के बाद 'ओम्' प्रतिगरण होता है, गाथाओं के बाद 'तथा' के रूप में। पाठ-श्रवण से पाप छूट जाता है। जो राजा विजय प्राप्त कर चुके हों यदि वे यज्ञ न भी करें तो इसका पाठ अवश्य सुनें। युद्ध में भीषण रक्तपात से जो भी पाप उपार्जित हुआ हो, वह सब नष्ट हो जाता है। पाठ करनेवाले को एक हजार गायें दें, प्रतिगरण करनेवाले को एक सौ गायें। ये दोनों आसन भी आख्याता को ही दे दें, साथ-साथ उजले खच्चरों (क्यों?) वाले रथ का दान भी उसे करें। पुत्र की कामना से इसे कोई करे तो अवश्य ही पुत्र होगा इसमें कोई सन्देह नहीं।

नरमेध—इस उपाख्यान में नरमेध के प्रश्न को लेकर बहुत बड़ा विवाद खड़ा हो गया है। कुछ विद्वान् स्पष्ट प्रमाणों से नरमेध का विधान मानते हैं, दूसरी ओर कुछ लोग इसका दृढ़तर प्रमाणों से खण्डन करते हैं। वास्तव

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

में यह जटिल समस्या हो गई है कि क्या मानें। क्या अन्य पशुओं की बलि के समान ही नरपशु भी बलि का पात्र था ? इस समस्या पर विचार करने के लिए पूर्वपक्ष और उत्तरपक्ष की स्थिति स्पष्ट करनी अपेक्षित है।

नरबलि के समर्थकों में हिलेब्रैण्ट (Hillebrandt) का नाम मुख्य है। इन्होंने अपने दो जर्मन ग्रंथों—कर्मकाण्ड साहित्य (Rituallitteratur) तथा वैदिक पुराणशास्त्र (Vedische Mythologie) में शुनःशेप की कथा के आधार पर नर बलि का प्रतिपादन किया है कि प्राचीन भारत में पशुमेध के साथ-साथ नरमेध भी, विशेषतः राजसूय में, प्रचलित था। इन लोगों का कथ्य है कि वरुण को बलि देना राजा हरिश्चन्द्र को अभीष्ट तभी था जब कि ऐसी प्रथा समाज में थी। नारद ने इसीलिये पुत्र की बलि उसे बतलाई थी। पुरुषमेध की भी वे ही प्रक्रियायें थीं जो सामान्य पशु के मेध की थीं। उसके भी स्वीकरण, आप्तीकरण तथा पर्यग्निकरण आदि होते थे। जिस प्रकार पशुओं का विनिमय होता था, उसी प्रकार बलि के योग्य पुरुष का भी विनिमय सम्भव था। तभी तो रोहित ने १०० गायें देकर अपने को वरुण की बलि पड़ने से बचा लिया। इसके अलावे, इतने बड़े-बड़े महर्षियों ने नरमेध का संचालन करना स्वीकार किया था, यह उसके प्रचलन का बहुत बड़ा प्रमाण है। हिलेब्रैण्ट तो यहाँ तक मानते हैं राजसूय यज्ञ में राजा लोग अपने अभिषेक के दिन अपनी बड़ी सन्तान की बलि दिया करते थे। शुनःशेप की कथा के द्वारा यह दिखलाने का प्रयास रहा होगा कि जिस प्रकार देवताओं ने शुनःशेप को बलि पड़ने से बचा लिया, उसी से इस प्रथा का अन्त करना अभीष्ट रहा होगा।

नरबलि की मान्यता प्रदान करनेवालों के तर्क स्थूल बुद्धि पर आधारित हैं। केवल शुनःशेप या रोहित को बलि के लिये स्वीकार कर लेना बहुत बड़ा प्रमाण नहीं है। इसके विरोध में निम्नलिखित तर्क दिये जा सकते हैं—

(क) भारतीय परम्परा से नरबलि सर्वथा निषिद्ध है। परम्परा भी दो तरह की होती है—लौकिक तथा शास्त्रीय। लौकिक परम्परा में आर्यों के बीच किंवदन्ती के रूप में भी नरमेध सुनने में नहीं आया। स्मरणीय है कि नरबलि और नरहत्या अलग चीजें हैं। यज्ञ में कभी आर्यों ने मनुष्य को देवता के

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

निमित्त नहीं मारा। हाँ, अनार्य जातियों में ऐसी प्रणाली थी जिसके प्रभाव से डाकुओं ने मध्ययुग में नरबलि की धूम मचा दी थी। लार्ड विलियम बेंटिक के समय में इनका विध्वंस कर्नल स्लीमन ने किया था। शास्त्रीय दृष्टि से भी कहीं नरमेध का उल्लेख केवल इस उपाख्यान को छोड़कर कहीं नहीं है। कात्यायन श्रौतसूत्र तथा अन्य श्रौतसूत्रों का आधार बस ऐतरेय की परम्परा ही है जिसका विवरण हम अब देंगे।

(ख) कोई पूछ सकता है कि परम्परा से जब यह निषिद्ध है तब ऐतरेय आदि ग्रंथों में निश्चित कथा और सिद्धान्तों का उत्तर क्या होगा। शांखायन श्रौतसूत्र (१५।११।१), कात्यायन श्रौतसूत्र (१५।६।१ तथा आगे) और वैतान सूत्र में (३७।१० और आगे) पुरुषमेध का नाम आया है। लेकिन पुरुषमेध यज्ञ के आधार पर मनुष्य की बलि पड़ना सिद्ध नहीं होता। पं० चिन्नस्वामी ने 'यज्ञतत्त्वप्रकाश' में इसे स्पष्टतः कहा है। पुरुषमेध एक पृथक् यज्ञ था। दूसरे इन सूत्रग्रंथों में उल्लिखित यज्ञ का केवल सैद्धान्तिक महत्त्व था, व्यवहार में ऐसा कभी नहीं था। वास्तव में नरबलि नहीं पड़ती थी।

(ग) शुनःशेप की कथा एक आख्यान है जिसका लक्ष्य पुत्र के महत्त्व का प्रतिपादन करना है। जिस किसी भी उपाय से, बलि देकर भी, पुत्र का सुख देखा जाय। घटना वास्तव में हुई कि नहीं—यह कहना कठिन है। परन्तु इस आख्यान का पाठ राजसूय में अभिषेक के दिन विहित है, इसके अलावे और कुछ नहीं। आख्यान काल्पनिक है। जिसका लक्ष्य ही कुछ और है (पुत्र का माहात्म्य-प्रतिपादन), आख्यान का सम्बन्ध नरबलि से बिल्कुल नहीं है क्योंकि यह अर्थवाद है।

(घ) वास्तव में यह कथा ही सिद्ध करती है कि नरबलि नहीं थी। नर की या अपने पुत्र की बलि, विक्रय, बंधन आदि करने पर अजीगर्त को दण्ड मिला कि उसे शुनःशेप जैसे सुप्रतिष्ठित और मेधावी ऋषि से हाथ धोना पड़ा। अतः पौराणिक शैली में यह आख्यान मित्रसम्मित उपदेश देता है कि नरबलि का विचार उठने पर भी ऐसा करना अधर्म है, दण्डनीय अपराध है।

(ङ) ऊपर पूर्वपक्षी लोग बड़े-बड़े ऋषियों का यज्ञ में भाग लेने की

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

बात उठा चुके हैं। यह ठीक है, परन्तु वे केवल कर्तव्य-निर्वाह के लिए आधे हृदय से उसमें भाग ले रहे थे। स्वयं बलि न देकर दूसरों का अन्वेषण करना क्या इसका सूचक नहीं ? बाँधने के लिए भी कोई नहीं मिल रहा था, यह नरबलि के अप्रचलन का द्योतक है। फिर भी यह प्रश्न तभी उठता है जब कथा की सत्यता पर विश्वास करें।

(च) अजीगर्त का अपने पुत्र को बेचना, बाँधना, मारना—यह मनोवैज्ञानिक और आचारशास्त्रीय प्रश्न है। बुभुक्षा सर्वोपरि चीज है जिसे दूसरे शब्दों में हम जिजीविषा कहते हैं। कोई भी व्यक्ति मरना नहीं चाहता। विश्वास न हो तो अकाल के समय की स्थिति का अध्ययन करें। फिर बुभुक्षा के बाद लोभ की भावना भी उमड़ पड़ती है। आज के युग की धन-लोलुपता और अत्याचार का यही कारण है। इसके लिए कुछ अकार्य नहीं। कोई दूसरा रास्ता न मिले तो कुछ भी करना आचारशास्त्र के नियमों के अनुकूल है। यही कारण है, अजीगर्त ने अपने पुत्र को मारने का साहस किया। वह आचारतः ठीक (Morally justified) है। उसका कोई दोष नहीं।

(छ) डा० कीथ का कहना है कि यदि राजसूय के अंग के रूप में नरमेध का विधान रहा भी हो तो इसी कथा के बहाने से पुरोहितों की नैतिक-भावना (Moral sense) ने इसे रोकने का प्रयास कड़े शब्दों में किया था।

निष्कर्ष यह है कि नरमेध के लिये सारे तर्क स्थिति को समझने पर व्यर्थ लगते हैं। इस आख्यान में जो भी विरोधी बातें लगती हैं उनके ऐतिहासिक खंडन की आवश्यकता नहीं, उनमें पौराणिक सत्यता (Mythological truth) है। पुत्र का माहात्म्य प्रदर्शित करनेवाले उपाख्यान में कल्पना बड़े अंशों में है। आख्यान का पाठ श्रवण करना चहिये, उससे अन्तरंग के आधार पर कुछ तथ्य निश्चित करना भ्रम है। पाठ का प्रयोग पुत्रप्राप्ति के लिए होता है। स्वयं आख्यान में ही हरिश्चन्द्र की पुत्र-प्राप्ति तथा विश्वामित्र द्वारा पुत्र के ग्रहण का वर्णन है। हरिश्चन्द्र की पुत्र-प्राप्ति विचित्र ढंग से होती है—इसी स्थिति पर कोई चीज देना कि उसका त्याग कर दें—अनुपयोग का इससे बड़ा उदाहरण क्या होगा ? विश्वामित्र एक दूसरे परिवार से पुत्र लेकर उसे ज्येष्ठ

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पद देते हैं। किसी प्रकार भी नरमेध की स्थिति नहीं मिलती। आख्यान आख्यान है, सत्य कुछ और ही चीज है।

ऋग्वेद और शुनःशेपोपाख्यान—ऋग्वेद से उपाख्यान का बड़ा घनिष्ठ संबन्ध है। उपाख्यान ऋग्वेद की ऋचाओं में अपनी स्थितियों को स्पष्ट करता है क्योंकि इसके अंत में कहा भी है कि इसमें १०० ऋचायें और गाथायें हैं। इसी रूप में यह आख्यान हमें प्राप्त होता है। लेकिन, क्या मूलतः यह इसी रूप में था या इसकी रूपरेखा कुछ दूसरी थी? रौथ (Roth) के अनुसार यह रूप किसी प्राचीनतर छन्दोबद्ध रूप पर आश्रित है जब कि ओल्डेनबर्ग (Oldenberg) का विचार यह है कि गाथाओं और गद्य के रूप में हमें एक वास्तविक आख्यान का उदाहरण मिलता है और ऐसे आख्यानों की सत्ता उस समय थी। अब प्रश्न कुछ दो रूपों में हो जाता है—(१) कथा का ऋग्वेद से संबन्ध और (२) गाथाओं से गद्य का संबन्ध।

(१) ऋग्वेद के प्रथम मण्डल में शुनःशेप से संबद्ध ऋचाओं में तथा पंचम मण्डल में भी शुनःशेप का नाम आता है। ऋग्वेद १।२४।२ में वरुण की स्तुति इसलिए की गई है कि वे गायक को मुक्त कर दें—

शुनःशेपो यमह्वद् गृभीतः (पकड़े जाने पर जिस वरुण को शुनःशेप ने बुलाया)।

दूसरी ऋचा में भी कुछ ऐसा ही है—

शुनःशेपो ह्यह्वद् गृभीतस्त्रिष्वादित्यं द्रुपदेषु बद्धः।

(पकड़े जाने पर लकड़ियों के तीन टुकड़ों में बँधकर जिस आदित्य को शुनःशेप ने बुलाया था।)

पंचम मंडल (५।२।७) में अग्नि की स्तुति की गई है कि तुमने बँधे हुए शुनःशेप को हजारों यूपों से मुक्त कर दिया।

इनमें से किसी संदर्भ के द्वारा ऐतरेयोक्त आख्यान की पुष्टि नहीं होती। शुनःशेप की कथा में कम से कम ये तीन बातें तो हैं ही—(१) वरुण, हरिश्चन्द्र और रोहित की कथा, (२) शुनःशेप और अजीगर्त की कथा, तथा (३) विश्वामित्र के पुत्रों और शुनःशेप की कथा। उपर्युक्त ऋचाओं में एक

८५५९८

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

का अर्थ है कि तीन लकड़ियों के खंडों से बँधे हुए शुनःशेप ने बुलाया था। यहाँ तीन द्रुपदों (लकड़ी के टुकड़ों) की संगति बैठाना बड़ा कठिन होता है। एक खूँटे से तीन खूँटों का होना—यह कैसा? ५।२।७ में भी यूप का नाम है, पर वहाँ 'सहस्रात्' शब्द फिर बाधक होता है। यह आलंकारिक प्रयोग है।

हरिश्चन्द्र, रोहित, अजीगर्त तथा इस प्रसंग में विश्वामित्र का भी नाम ऋग्वेद में नहीं आता। इससे हम इस आख्यान को परकालिक मानकर ऋग्वेद से पृथक् कर सकते हैं। राजसूय में होता के द्वारा पाठ करने के लिए १०० ऋचायें इस प्रसंग के अनुकूल चुन ली गई होंगी। रॉथ के अनुसार इस आख्यान की प्रगति उस समय हुई जब ऋचाओं का संकलन चल रहा था और इसीलिए प्रथम मंडल में शुनःशेप के नाम से बहुत सी ऋचायें आ गई हैं जो विभिन्न देवताओं की स्तुति में हैं। उन्होंने इस पर बहुत जोर दिया है कि मंत्रों के संकलन में विशेष ध्यान उनके ऋषियों पर रखा गया था, जब कि आफ्रेख्ट (Aufrecht) का कहना है कि अनुक्रमणियों में जो ऋषियों का नाम दिया गया है वह बहुत कुछ ब्राह्मण ग्रन्थों के आधार पर ही है। जब तक इन मतों की पूर्ण परीक्षा-समीक्षा न हो जाय तब तक इससे आख्यान की उत्पत्ति के विषय में कुछ भी कहना कठिन है। हाँ, यह कह सकते हैं कि शुनःशेप का नाम मंत्रों में प्राप्त है, उसके बाँधे जाने का भी उल्लेख वहाँ है—इस युग में ही इस आख्यान की कल्पना न्यूनाधिक रूप में होने लगी थी।

(२) गाथाओं को देखने से मालूम होता है कि शुनःशेप के बंधन मुक्त होने तथा विश्वामित्र के परिवार में मिल जाने की कथा का विकास हुआ था। ७।१७ से आरंभ करके गाथाओं के अंत तक एक संवाद के रूप में ही कथा है। केवल वक्ताओं के नाम देने की आवश्यकता रह जाती है। यह पूरा संदर्भ पद्यात्मक है जो महाकाव्यों की शैली में है। इन पद्यों में ऐतरेय ने एक महत्त्वपूर्ण बात जोड़ भी दी है कि विश्वामित्र के आधे पुत्रों ने शुनःशेप के अन्दर रहना अंगीकार किया। यह पद्य में नहीं है और पद्य की घटनाओं से मिलती भी नहीं है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इसका स्पष्टीकरण अपेक्षित है। विश्वामित्र ने अपने पुत्रों को संबोधित किया—

मधुच्छन्दाः शृणोतन ऋषभो रेणुरष्टकः।
ये के च भ्रातरः स्थनास्मै ज्यैष्ठ्याय कल्पध्वम्॥

विश्वामित्र ने केवल 'मधुच्छन्दा' से आरम्भ किया था। मधुच्छन्दा आदि ने ही उत्तर दिया कि हमारे पिता जी जो कहते हैं, हम उसे मानते हैं—

यन्नः पिता संजानीते तस्मिंस्तिष्ठामहे वयम्।
पुरस्त्वा सर्वे कुर्महे त्वामन्वञ्चो वयं स्मसि॥

अस्वीकार करनेवाले पुत्रों का उल्लेख या संकेत भी कहीं पद्य-भाग में नहीं है। ऐतरेय में उन क्रान्तिकारी पुत्रों का उल्लेख इसलिए सम्भवतः किया गया है कि अन्ध्र, पुलिन्द आदि दस्यु जातियों का भी इतिहास में कुछ स्थान हो जाय। शुनःशेप को अपने परिवार के अनुसार ही विश्वामित्र के पुत्रों में भी मध्यम स्थान मिलना चाहिए था—किन्तु विश्वामित्र उसे ज्येष्ठ बनाना चाहते थे (यह गाथा में ही कहा गया है) अतः समन्वय की स्थापना के लिए भी उनके क्रान्तिकारी पुत्रों की कल्पना आवश्यक थी।

इस तथ्य से प्रायः विद्वानों को लगता है कि गद्य अपेक्षाकृत नवीन योजना है, मूल रूप से यह कथा गाथाओं में ही थी। पर क्या इतने से ही पूरे हरिश्चन्द्रोपाख्यान को मूलतः गाथात्मक माना जा सकता है? रॉथ ने इस प्रश्न पर विचार नहीं किया था। यह ठीक नहीं है कि १७वें और १८वें खण्ड की गाथायें एक आख्यान के रूप में हैं—विशेष के लिए प्रयुक्त हैं। लेकिन १३वें (पुत्र माहात्म्य) और १५वें (भ्रमण माहात्म्य) खण्ड की गाथायें आख्यान के रूप में नहीं हैं—बिल्कुल सामान्य हैं, कहीं भी उद्धरण देने के योग्य हैं। सामान्य भी ऐसा-वैसा नहीं! हरिश्चन्द्र को सुनाई गई गाथा में संबोधन पद है—'ब्रह्माणः' (ब्राह्मणो!)। इधर की गाथायें कहावतों के रूप में थीं जो कथा में उपयुक्त जानकर जोड़ दी गई हैं। १५वें खण्ड की गाथाओं में भी वही बात है। हाँ, एक गाथा में रोहित का नाम आया है। इसके लिए तीन उत्तर संभव हैं—(क) ये गाथायें मूलतः हरिश्चन्द्र और रोहित की कथा में ही हों, जैसा कि ओल्डनबर्ग कहते हैं।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सर्वसुलभ

(ख) रोहित नाम ही किसी प्राचीन पद्य से लिया गया हो जिसमें रोहित शब्द से किसी दूसरे व्यक्ति का ही बोध होता हो। (ग) यह 'रोहित' शब्द गाथा में किसी दूसरे व्यक्ति के दूसरे नाम के स्थान पर रख दिया गया हो जिससे कथा में इसकी संगति बैठ जाय। फिर भी इन तर्कों के ऊपर निर्भर रह कर यह कहना कठिन है कि मूलतः इन गाथाओं का संबन्ध कथा के साथ था।

इस प्रकार यह सिद्ध होता है कि शुनःशेप का वर्तमान संस्करण कई खण्डों का है। ओल्डनबर्ग के लक्षणों से आख्यान के तत्त्व इसमें प्राप्त नहीं होते। आख्यान में एक गद्य-कथा होती है जिसमें पद्यों की प्रसंगानुकूल व्याख्या होती है। १७वीं और १८वीं कंडिकाओं में आख्यान माना जा सकता है यदि आरंभ में भी उनमें गद्य-भाग पद्यों को जोड़नेवाला रहा होता। लेकिन ऐसी बात नहीं है। आरंभिक कंडिकाओं (१३वीं, १५वीं) का गद्य-भाग तो गाथाओं से इस रूप में संबद्ध है भी नहीं। वे उपदेशप्रद (Gnomic) गाथायें हैं, विवरणात्मक (Narrative) नहीं। इनका रूप यही है जो बाद में चलकर हमें पञ्चतन्त्र और हितोपदेश में मिलता है परन्तु वह ओल्डनबर्ग का आख्यान नहीं।

उपर्युक्त विचार-शृङ्खला पर चलने के बाद डा० कीथ शुनःशेपोपाख्यान के विकास की निम्नलिखित अवस्थाओं का पता लगाते हैं—(१) पहली अवस्था में शुनःशेप किसी भयंकर विपत्ति से बचता है और देवताओं द्वारा वरदान पाता है (ऋ० सं० १।२४।१२–१३ तथा ५।२।७)। (२) दूसरी अवस्था में शुनःशेप के बलिदान का प्रस्ताव, उसकी रक्षा तथा विश्वामित्र के द्वारा उसका ग्रहण—ये विषय जोड़ दिये गये। विश्वामित्र का यहाँ प्राधान्य रहा। इस अवस्था का वर्णन ऐतरेय ब्राह्मण ७।१७–१८ में है। (३) अन्तिम अवस्था में हरिश्चन्द्र और रोहित का उपाख्यान जोड़कर शुनःशेप के बलिदान के कारणों की पूर्ति की जाती है तथा अपनी वर्तमान अवस्था में यह आख्यान पहुँच जाता है। इसका वर्णन १३–१६ कण्डिकाओं में है। यह कहना कठिन है कि यह भाग भी गाथाओं के रूप में कभी था। हाँ, यह कहा जा सकता है कि शुनःशेप की बलि के लिए कुछ-न-कुछ

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कारण अवश्य रहा होगा लेकिन वह एक सामान्य कथा रही होगी, न कि नारद और हरिश्चन्द्र का यह हास्यास्पद संवाद। सम्भवतः शुनःशेप और हरिश्चन्द्र की कथायें दो भिन्न परंपराओं में चल रही थीं तथा उन्हें मिलने का यहाँ अवसर दिया गया है।

कथा का परवर्ती विकास—ऐतरेय ब्राह्मण के इस उपाख्यान में वसिष्ठ और विश्वामित्र के शत्रुत्व का कोई संकेत नहीं क्योंकि वे दोनों एक ही यज्ञ के ब्रह्मा और उद्गाता हैं। किन्तु हरिवंश (महाभारत का परिशिष्ट) के बाद से इसमें कई विकृतियाँ आने लगती हैं। संभवतः शुनःशेप ने त्रिशंकु का रूप धारण किया था क्योंकि शुनःशेप के तीन द्रुपदों में बँधे जाने का वर्णन ऋग्वेद में मिलता है। इसी को ऋषिपद देने के समय (जिस समय ऋत्विजों ने उससे कहा था कि आज के यज्ञ का संचालन तुम्हीं करो) की छोटी घटना में ही विश्वामित्र और वसिष्ठ—दो ऋत्विजों में शास्त्रार्थ की कल्पना की गई है जो बाद में चलकर दोनों के विरोध की कथा में परिणत हो गई। त्रिशंकु को स्वर्गपद देने में असफल विश्वामित्र ने एक नये संसार की रचना की थी—वह दक्षिण में है। यहाँ उनके पुत्रों ने शुनःशेप को अपना ज्येष्ठ भाई बनाने का विरोध किया था, इससे उन्हें दक्षिण में अन्ध्र, पुलिन्दादि बनाकर ही विश्वामित्र ने दम लिया। इन दोनों घटनाओं में अवश्य तारतम्य है।

इसके बाद राजर्षि विश्वामित्र के ब्रह्मर्षि होने की कथा मिलती है। इसका रहस्य यह है कि वे राजपुत्र थे, शुनःशेप ब्राह्मण होकर उनका पुत्र बन गया था, इसके लिए कल्पना फिर की गई कि वे भी ब्राह्मण बनने के लिए सचेष्ट हो गये। उनके शत्रु वसिष्ठ के द्वारा ही उन्हें यह पद मिला।

विश्वामित्र गाथिन के पुत्र थे, जह्नु के गोत्र में थे जिसका आधिपत्य शुनःशेप को मिलता है। 'गाथिन' को बाद में गाधि बनाया गया तथा विश्वामित्र पीछे चल कर 'गाधितनय' 'गाधेय' आदि उपाधियों से विभूषित हुए।

हरिश्चन्द्र का पुत्र रोहित रोहिताश्व (शुनःशेप का स्थानी) बना जिसे विश्वामित्र ने ग्रहण किया था। कल्पना यहाँ तक पहुँची कि विश्वामित्र ने साँप

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

बन कर उसे छोटी अवस्था में ही डँस लिया। सत्य की परीक्षा लेने के लिए वे हरिश्चन्द्र से भी भिड़ गये। इसके अलावे इस कथा से परवर्ती कथा का सूत्र खोजना बड़ा कठिन है फिर भी यदि ऐसा हो तो परम मनोरंजन का विषय हो सकता है।

कथा का महत्त्व—इस मनोहर आख्यान का न केवल पुत्र प्राप्ति के धार्मिक प्रयोग में आनेवाला महत्व है, अपितु लौकिक दृष्टि से भी कथा हमारे विचारों को आलोडित करती तथा निम्नलिखित दृष्टिकोणों पर पहुँचाती है—

(१) भ्रमण का लौकिक और अलौकिक माहात्म्य बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। सर्वप्रथम ऐतरेय ब्राह्मण ने ही 'चरैवेति' (घूमते ही रहो) का अमूल्य उपदेश दिया था तथा घूमने के लिए आर्यों के हृदय में अपार प्रेम उत्पन्न किया। मेरी व्यक्तिगत धारणा है कि तीर्थयात्रा का इतना अधिक माहात्म्य जो बाद में पुराणों ने बतलाया उसके स्रोत इन्द्र के द्वारा दिये गये उपदेश ही हैं।

(२) व्यक्ति अपने कर्मों से कुछ भी बन सकता है। वह शुनःशेप जिसे माता-पिता ने केवल बेच ही नहीं दिया बल्कि मृत्यु की सारी सामग्रियाँ भी उपस्थित कर दीं, मारने में कसर नहीं रख छोड़ी, अपने कर्मों से—स्तुति करके—ऐसा ऋषिपद पा सका कि यज्ञ का संपादन भी करने लगा। यही नहीं अपनी योग्यता के आधार पर ही विश्वामित्र जैसे ऋषि में भी अपने १०० पुत्रों के ऊपर प्रतिष्ठित करने की इच्छा (नहीं, तृष्णा) उत्पन्न कर दी तथा अपनी मेधा के ऊपर रह कर वह जह्नुगोत्र का अधिपति बन गया।

(३) भूख की ज्वाला संसार में सर्वोपरि है, उसके समक्ष न तो परिवार है न धन। अजीगर्त को शुनःशेप से कोई वैर नहीं था, पर उसने विवश हो कर एक पुत्र को बेचना चाहा। यह संयोग की बात है कि दुर्भाग्य शुनःशेप के सिर पर ही नाच रहा था। वह मँझला लड़का था। पिता ने बड़े को बचाया, माता ने छोटे को।

(४) बुभुक्षा आगे चलकर लोभ का रूप धारण कर लेती है। १०० गायें मिल जाने, शुनःशेप को देकर अजीगर्त निश्चिन्त हो गया था। यज्ञ में आने पर उसमें लोभ आ गया। उसने शुनःशेप को तो अपने पुत्रों के बीच से हटा ही

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

दिया था, उस पर क्या मोह ? लोभ में पड़ कर उसे बाँधने और मारने पर भी उतारू हो गया है। लोभ के कारण, काम के कारण या अन्य किसी दुर्गुण से बाल बच्चों को मारने की घटनायें आये दिन सुनने में आती हैं। ये उक्तियाँ बहुत प्रसिद्ध हैं—बुभुक्षितः किं न करोति पापम्, लोभः पापस्य कारणम्।

(५) अपराधी को दण्ड अपने आप मिलता है जिससे उसमें पश्चात्ताप की भावना उत्पन्न होती है। अपने पुत्र की आन्तरिक महत्ता न समझ कर अजीगर्त ने उसे बेच दिया जिसका दण्ड उसे मिला कि अपना पुत्र दूसरे कुल में जा मिला। पश्चात्ताप करते रहने पर भी पुत्र ने उसे फटकार सुनाई। अपने अपराधी पिता को उसने आड़े हाथों लिया।

इस प्रकार इस उपाख्यान का अपना विशिष्ट स्थान है जिससे यह इतना लोकप्रिय हो सका और ब्राह्मणग्रंथ की सुषमा-वृद्धि में सहयोग दे सका।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ऐतरेयब्राह्मणान्तर्गत

हरिश्चन्द्रोपाख्यानम्

सायणभाष्यसहितं 'प्रकाश' हिन्दी व्याख्योपेतम्

त्रयस्त्रिंशाध्याये प्रथमः खण्डः

आहिताग्नेर्मृ तावग्निहोत्राङ्गे विकले तथा।
प्रायश्चित्तमपत्नीकहोम इत्यादि वर्णितम् ॥
उक्तं द्वात्रिंशदध्यायैः कर्म त्रर्णत्रयान्वितम्।
अथ त्वष्टभिरध्यायैर्वर्ण्यते राजकर्तृकम् ॥
तत्र क्रतौ राजसूये बह्विष्टिपशुसोमके।
मध्येऽभिषेचनीयेऽह्नि शौनःशेपं श्रुतं श्रुतौ ॥
त्रयस्त्रिंशोऽयमध्यायः शौनःशेपेतिनामवान्।
हरिश्चन्द्रकथा तत्र कथिता बहुपुत्रदा ॥

तदेतदुपाख्यानं दर्शयति—

हरिश्चन्द्रो ह वैधस ऐक्ष्वाको राजाऽपुत्र आस। तस्य ह शतं जाया बभूवुः। तासु पुत्रं न लेभे। तस्य ह पर्वतनारदौ गृह ऊषतुः। स ह नारदं पप्रच्छ।

वेधस् के पुत्र तथा इक्ष्वाकु-वंश में उत्पन्न राजा हरिश्चन्द्र पुत्रहीन थे। उन्हें एक सौ स्त्रियाँ थीं [किन्तु] उनसे पुत्र नहीं हुआ। उनके घर में पर्वत और नारद [दो ऋषि] रहा करते थे। उन्होंने (= हरिश्चन्द्र ने) नारद से पूछा—

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सा०—हरिश्चन्द्रो नाम राजर्षिः, 'प्रस्कण्वहरिश्चन्द्रावृषी' (६।१।१५३) इति पाणिनिना सूत्रितत्वात्। स च वेधसो नृपतेः पुत्रः, इक्ष्वाकुवंशोद्भवो राजा, पुत्रहीन आस। स च शतसंख्यानां जायानां मध्ये कस्यांचिदपि जायायां पुत्रं न लेभे। तस्य राज्ञो गृहे पर्वतनारदनामानौ यावृषी, तौ निवासं चक्रतुः। तयोर्मध्ये नारदमृषिमेतया गाथया राजा पप्रच्छ।

विमर्श—'हरिश्चन्द्र' शब्द की सिद्धि पाणिनि के द्वारा निपातन से होती है क्योंकि ऋषि के अर्थ में हरि+चन्द्र मिलाने पर सुट् का आगम ६।१।५३ सूत्र से माना जाता है। इससे प्रस्कण्व और हरिश्चन्द्र शब्दों की सिद्धि होती है। किन्तु वैदिक-भाषा में कितने ही शब्दों के आरम्भ में स् (या श्) लगा था जो बाद में लुप्त हो गया। उदाहरण के लिए—√ स्पश्य् से √ पश्य् = देखना। इसके लिए तुलना करें—स्पश = चर, Eng, SPY=गुप्तचर। O.French में ESPIE ESPIER, होते हैं जो आदिस्वरागम (Prothesis) से हुए हैं। उसी प्रकार √ श्चन्द्र=चमकना जिसके वेद में बहुत-से प्रयोग हैं। इसी से हरि–श्चन्द्र बना है। निरुक्त में (२।३) जो 'विश्चकद्राकर्षः' उदाहरण दिया गया है उसमें भी श्चकद्र से ही चकद्र बना है। अन्य उदाहरण हैं—√ श्च्युत > च्युत, स्तोक > तोक, स्तन्द्र > तन्द्र आदि।

वैधसः = वेधसः राज्ञः पुत्रः। वेधस्+अण्, 'तस्यापत्यम्' (४।१।९२) के अर्थ में 'ऋष्यन्धकवृष्णिकुरुभ्यश्च' (४।१।११४) से राजर्षि वेधस् से अण् विहित होता है। ऐक्ष्वाकः = इक्षुमाकरोति इति इक्ष्वाकुः (इक्षु+आङ्+√कृ+डु) तस्य वंशे भवः (इक्ष्वाकु+अण्)। उकार का निपातन से लोप किया गया नहीं तो गुण होकर 'ऐक्ष्वाकवः' हो जाता। इक्ष्वाकु नाम के राजा सत्ययुग में वैवस्वतमनु के पुत्र थे। इन्होंने अयोध्या में राजधानी बनाई और सूर्यवंश की स्थापना की। इसी में रामचन्द्र भी हुए।

ब्राह्मण-ग्रन्थों में विशेषतया इतिहास या उपाख्यान का वर्णन करते हुए 'ह' और 'आस' इन दो शब्दों का बहुत प्रयोग किया गया है। इन्हीं से 'इतिहास' (इति = ऐसा, ह = निश्चित रूप से, आस था) शब्द भी बना है। 'ह' फिर भी इन स्थलों में वाक्य-पूरण (निरुक्त १।९) का ही काम

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

करता है। आस = √ अस् + लिट्, 'बभूव' का वैकल्पिक रूप। ऐतिहासिक दृष्टि से 'आसीत्' की उत्पत्ति भी इसी से हुई है। ऊषतुः—√ वस् (रहना) + लिट् (अतुस्)—कित् के कारण संप्रसारण (वचिस्वपियजादीनां किति ६।१।१५)। अर्थ होगा—'रहा करते थे'।

तां गाथां दर्शयति—

यं न्विमं पुत्रमिच्छन्ति ये विजानन्ति ये च न।
किंस्वित्पुत्रेण विन्दते तन्म आचक्ष्व नारद ! इति॥

"चूँकि [सभी लोग] पुत्र चाहते हैं, जिनके पास ज्ञान है वे भी (मनुष्य) तथा जिन्हें [ज्ञान] नहीं है वे भी (पशु); इसलिए हे नारद ! यह मुझे बतलावें कि पुत्र से क्या मिलता है।"

सा०—ये देवमनुष्यादयो विजानन्ति = विवेकज्ञानयुक्ताः। ये च पश्वादयो न विजानन्ति = विवेकज्ञानरहिताः। ते सर्वेऽपि नु = क्षिप्रं यमिमं पुत्रमिच्छन्ति तेन पुत्रेण किंस्विद् विन्दते = किं नाम फलं पिता लभते ? हे नारद ! मे मह्यं तत्फलमाचक्ष्वेति राज्ञः प्रश्नः।

विमर्श—'नु' का अर्थ सायण यहाँ 'क्षिप्र (शीघ्र)' देते हैं। यास्क के अनुसार (नि० १।४) नु के कई अर्थ हैं—हेत्वपदेश, अनुपृष्ट, उपमार्थक किन्तु क्षिप्र नहीं। संस्कृत में प्रश्न पूछने के अर्थ में प्रायः 'नु' का प्रयोग होता है। यहाँ भी हरिश्चन्द्र के द्वारा प्रश्न पूछा जा रहा है। इस तरह किसी विशेष अर्थ में नहीं, बल्कि संकेतात्मक—रूप से यहाँ नु का प्रयोग हुआ है। 'नु' से ही नूतन, नूत्न, नव प्रभृति शब्दों की उत्पत्ति हुई है। यही कारण है कि पाश्चात्त्य विद्वान् संहिताओं के 'नु' का अर्थ now (अभी) करते हैं। इन्द्रस्य नु वीर्याणि प्र वोचम् = I will now proclaim the heroic deeds of Indra (Macdonell) तुलना करें—ग्रीक nyn, जर्मन nun, लैटिन nunc, ऍं सै० nu. अंग० now, सं० नूनम्। प्रस्तुत स्थल में भी नु = सम्प्रति हो सकता है। स्विद् का प्रयोग भी बहुत पुराना है। प्रश्न पूछने में ही इसका भी प्रयोग होता है। नासदीय—सूक्त में 'अधःस्विदासी-दुपरिस्विदासीत् ?' पूछा गया है। महाभारत में भी 'किंस्विद् गुरुतरं भूमेः ?'

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

आदि प्रयोग हैं। आचक्ष्व = आ + √ चक्षिङ् (कहना) + लोट् मध्यम एक व० स्व।

तस्योत्तरमवतारयति—

स एकया पृष्टो दशभिः प्रत्युवाच, इति।

एक [गाथा] से पूछे जाने पर [नारद ने] दश [गाथाओं] से उत्तर दिया।

स नारद एकया गाथया पृष्टः सन् दशभिर्गाथाभिः प्रत्युत्तरमुक्तवान्।

तत्र प्रथमां गाथामाह—

ऋणमस्मिन्संनयत्यमृतत्वं च गच्छति।
पिता पुत्रस्य जातस्य पश्येच्चेज्जीवतो मुखम् ॥१॥

यदि पिता अपने उत्पन्न तथा जीवित पुत्र का मुँह देख ले तो उसमें वह एक ऋण रखता है (= पुत्र में रखकर स्वयं मुक्त होता है) तथा अमरता भी प्राप्त करता है॥ १॥

सा०—उत्पन्नस्य, सुखेन जीवतः पुत्रस्य मुखं पिता यदि पश्येत्तदानीमस्मिन्पुत्रे स्वकीयमृणं लौकिकं वैदिकं च, संनयति = सम्यगवस्थापयति। लौकिकस्यावस्थापनात् 'पुत्रपौत्रादिभिर्ऋणं प्रत्यर्पणीयमिति' स्मृतिकारा आहुः। वैदिकं तु 'त्रिभिर्ऋणवा जायत' इत्यादि श्रुत्युक्तं पूर्वमेवोदाहृतम्। तस्य च पुत्रावस्थापनं संपत्तिनामकेन कर्मणा संपद्यते। तच्च कर्म वाजसनेयिभिराम्नातम्—"अथातः संपत्तिः। यदा प्रैष्यन्मन्यते, अथ पुत्रमाह—'त्वं ब्रह्म, त्वं यज्ञः, त्वं लोक इति'। स पुत्रः प्रत्याह—'अहं ब्रह्माहं यज्ञोऽहं लोक इति'" ब्रह्म = मया कर्त्तव्यं वेदाध्ययनं, मयाऽनुष्ठेया यज्ञाश्च, मया संपाद्या उत्तमा लोकाश्च—इत्येतत् सर्वं पुत्रेण त्वयैव संपादनीयमिति पितृवाक्यस्यार्थः। 'सर्वमहं संपादयिष्यामि' इति पुत्रवाक्यस्यार्थः। अत्राप्यारण्यककाण्डे संक्षिप्य संदर्शयिष्यते—'सोऽस्यायमात्मा पुण्येभ्यः कर्मभ्यः प्रतिधीयते' इति। एवमृणं पुत्रे समर्पयति। तथैवामृतत्वं मरणरहितं मुक्तिपदं च गच्छति। पुत्रार्पितलौकिकवैदिकभारस्याविघ्नेन तत्त्वज्ञानसंपादनात्।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

विमर्श—पुत्र के द्वारा पिता ऋण से मुक्त होता है। सायण दो ऋणों का उल्लेख करते हैं—लौकिक और वैदिक। लौकिक ऋण वह है जो पिता अपने सुख या विविध कर्मों के लिए महाजनों से मुद्राओं के रूप में लेता है। यदि वह विना उऋण हुए ही मर जाता है तो अपने पिता के ऋण से मुक्त होना पुत्र का कर्तव्य होता है, तभी वह धार्मिक कृत्यों का फल पा सकता है। स्मृतिकार इसके लिए व्यवस्था देते हैं कि पुत्र-पौत्र आदि को ऋण का प्रत्यर्पण (मोचन) करना चाहिए। यहीं भारत की वंशगत ऋण-प्रणाली (Ancestral debt) का सूत्रपात होता है। वैदिक ऋण का अर्थ है—देव, ऋषि और पितरों का ऋण। देवों के ऋण से यज्ञों द्वारा मुक्ति होती है, ऋषि-ऋण से स्वाध्याय द्वारा, तथा पितृ-ऋण से श्राद्ध और संतानोत्पत्ति द्वारा। विष्णुधर्मोत्तर में कहा है—

देवानामनृणो जन्तुर्यज्ञैर्भवति मानवः।
अल्पवित्तश्च पूजाभिरुपवासव्रतैस्तथा॥
श्राद्धेन प्रजया चैव पितॄणामनृणो भवेत्।
ऋषीणां ब्रह्मचर्येण श्रुतेन तपसा तथा॥

सायण कहते हैं कि वैदिक ऋण की स्थापना पुत्र में संपत्ति नामक कर्म के द्वारा होती है। इसका संपादन वाजसनेयि—शाखावालों के अनुसार दिया गया है। पिता कहता है कि तुम ब्रह्म हो, तुम यज्ञ हो, तुम लोक हो। पुत्र भी कहता है कि हाँ, मैं यह सब हूँ। अभिप्राय है कि ब्रह्म या पिता द्वारा किया जाने वाला वेदाध्ययन (ऋषिऋण), उसके द्वारा अनुष्ठेय यज्ञ (देव ऋण) तथा उसके द्वारा संपादन करने योग्य उत्तम लोक (पितृ ऋण) ये सभी कर्म पुत्र द्वारा ही अब से किये जाँय। इस विधि के बाद से पुत्र पिता का ऋण ले लेता है। इस ऋण की स्थापना के बाद स्वाभाविक है अमरत्व या मुक्ति मिल जाय।

द्वितीयां गाथामाह—

यावन्तः पृथिव्यां भोगा यावन्तो जातवेदसि।
यावन्तो अप्सु प्राणिनां भूयान्पुत्रे पितुस्ततः॥ २॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्राणियों को जितने सुख पृथ्वी से (मिलते हैं), जितने अग्नि से तथा जितने जल से—उनसे भी अधिक [सुख] पिता को पुत्र से है ॥ २ ॥

सा०—पृथिव्यां भोगाः = सस्यनिवासादयः। जातवेदस्यग्नौ भोगाः = दहनपचनादयः। अप्सु भोगाः = स्नानपानादयः। प्राणिनामेते सर्वे भोगा यावन्तः सन्ति ततस्तावद्भ्यः सर्वेभ्यो भोगेभ्यो भूयानधिकः पितुः पुत्रे भोगो विद्यते, अत्यन्तसुखहेतुत्वात्। तथा चाहुः—

'पुत्रोत्पत्तिविपत्तिभ्यां नापरं सुखदुःखयोः' इति।

विमर्श—'यावन्तो अप्सु' में प्रकृत्यान्तःपादमव्यपरे (६ । १।११५) से प्रकृतिभाव हो गया है, ओ का लोप नहीं हुआ। पृथ्वी से मिलनेवाले सुख = अन्नोत्पत्ति, निवास, शयनादि। अग्नि के सुख = जलाना, गर्मी उत्पन्न करना, रसोई बनाना। जल के सुख = स्नान, पान आदि। पुत्र की उत्पत्ति से बड़ा सुख नहीं विपत्ति से बड़ा दुःख नहीं।

तृतीयां गाथामाह—

शश्वत्पुत्रेण पितरोऽत्यायन्बहुलं तमः।
आत्मा हि जज्ञ आत्मनः स इरावत्यतितारिणी ॥३॥

पितृ-गण पुत्र के द्वारा सदा के लिए बड़े-बड़े दुःखों को पार कर जाते हैं; क्योंकि आत्मा से [पुत्र के रूप में] आत्मा उत्पन्न होती है; वह (पुत्र) अन्नों से भरी हुई, पार करनेवाली [नौका] है ॥३॥

सा०—पितरो जनका उत्पन्नेन पुत्रेण शश्वत्सर्वदा, लोकद्वयेऽपि बहुलमभ्यधिकं तम ऐहिकमामुष्मिकं च दुःखमत्यायन्=अतिक्रामन्ति। तथा च बौधायन आह—

पुदिति नरकस्याख्या दुःखं च नरकं विदुः।
पुत्तस्त्राणात्ततः पुत्रमिहेच्छन्ति परत्र च ॥ इति ॥

किंच हि=यस्मात्कारणात्पितुः 'पुत्र उत्पन्न' इत्युक्ते सति, पिता स्वस्मात्स्वयमेव जज्ञे=उत्पन्नः इत्युक्तं भवति। ततः पिता यथा स्वयं स्वकीयं दुःखं विनाशयति तथा पुत्रोऽप्येतद् दुःखं विनाशयतीति द्रष्टव्यम्। तस्मात्स पुत्र इरावती=अन्नयुक्ता, अतितारिणी=नदीसमुद्रादेरतितरणहेतुः, नौरिति शेषः।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

गाथा एकी पाना ७,८,९,१०

पत्नी इसलिए 'जाया' कहलाती है कि इसमें पुनः उत्पत्ति होती है (√जन्)। वही (स्त्री) उत्पादक है, जन्म देती है। यह बीज [वहीं] रखा जाता है ॥७॥

सा०—यद् यस्मात्कारणात् अस्यां गर्भधारिण्यामयं पिता पुत्ररूपेण पुनर्जायते, तत् तस्मात्कारणात् लोकप्रसिद्धा या जायाऽस्ति.सा 'जायतेऽस्यामिति' व्युत्पत्त्या जायाशब्दवाच्या भवति। किं चैषा भूत्याभूतिशब्दाभ्यामभिधीयते। भवत्यस्यां पुत्ररूपेण पतिरित्येषा भूतिशब्दवाच्या। रेतोरूपेणाऽऽगत्य, अस्यां पुत्ररूपेण भवतीत्याभूतिशब्दवाच्या। एतदेतस्यां स्त्रियां बीजं रेतोरूपं निधीयते=प्रक्षिप्यते तस्मादुक्ताः शब्दा उपपद्यन्ते।

विमर्श—शबरस्वामी ने मीमांसासूत्रों के भाष्य में ब्राह्मणों का वर्गीकरण करते हुए लिखा है—

> हेतुर्निर्वचनं निन्दा प्रशंसा संशयो विधिः।
> परक्रिया पुराकल्पो व्यवधारणकल्पना॥
> उपमानं दशैते तु विजयो ब्राह्मणस्य तु ॥ (श० भा० २।१।८)

यहाँ पर इन विषयों में निर्वचन (etymology) का उदाहरण देखें। 'जाया' की व्युत्पत्ति√जन् (जन्म लेना) से होती है, अर्थ होगा-जायते अस्यामिति (जिसमें पति जन्म लेता है)। आभूति और भूति दोनों शब्दों के एक ही अर्थ हैं। स्त्री को ही दोनों कहते हैं। पुत्र रूप में .पति स्त्री में होता है (भवति) इसलिए--भूति (उत्पादक)। बीज के रूप में आकर (आगत्य) यहाँ पुत्र के रूप में हो जाता है (भवति) इसलिए--आभूति (जन्मदात्री, उत्पादिनी Productive)। एतत् का अर्थ सायण 'एतस्याम्') करते हैं स्पष्टतः यह शब्द सुबन्त-प्रत्यय के लोप से बना है।

अष्टमीं गाथामाह—

देवाश्चैतामृषयश्च तेजः समभरन्महत्।
देवा मनुष्यानब्रुवन्नेषा वो जननी पुनः ॥ ८ ॥

देवताओं और ऋषियों ने इसे (स्त्री को) बहुत अधिक तेज (सार, सौन्दर्य)

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

से भर दिया। फिर वे देवता मानवों से बोले कि यही (स्त्री) बाद में तुम्हारी माता है ॥ ८ ॥

सा०—एतामेतस्यां योषिति देवाश्च महर्षयश्च स्वकीयं महत्तेजो रेतोरूपं सारं समभरन् = पुत्रोत्पादनाय संपादितवन्तः। स्वयमेव संपाद्य ततो मनुष्यानित्यब्रुवन्—हे मनुष्याः! येयमिदानीं जायारूपेण वर्तते सेयं पुनर्वो युष्माकं पुत्ररूपे जन्मनि जननी भवति।

नवमीं गाथामाह—

नापुत्रस्य लोकोऽस्तीति तत्सर्वे पशवो विदुः।
तस्मात्तु पुत्रो मातरं स्वसारं चाधिरोहति ॥ ९ ॥

'पुत्रहीन के लिए यह संसार [सुखकर] नहीं है'—यह बात सभी पशु जानते हैं। इसलिए [पशु-जगत् में] पुत्र माता और बहन के साथ भी सहवास (या आरोहण) करता है ॥ ९ ॥

सा०—लोको = लोकजन्यं सुखमपुत्रस्य नास्ति। न हि पुत्रदर्शनेन यत्सुखं तदन्यदर्शनेन क्वचिदपि दृश्यत इति यदस्ति, तत्सर्वे गोमहिष्यादयो जानन्ति यस्मात्, तस्मादेव कारणात्पशुजातौ जातः पुत्रो = वत्सः, स्वकीयां मातरं भगिनीं वा पुत्रोत्पादनार्थमधिरोहति।

दशमीं गाथामाह—

एष पन्था उरुगायः सुशेवो, यं पुत्रिण आक्रमन्ते विशोकाः।
तं पश्यन्ति पशवो वयांसि च, तस्मात्ते मात्रापि मिथुनीभवन्ति ।१०

वह मार्ग प्रशस्त (विस्तृत, सायण के अनुसार-सत्प्रशंसित) तथा सुसेव्य है, जिस पर पुत्रवान् लोग शोक से रहित होकर चला करते हैं। इसे पशु और पक्षी भी देखते (समझते) हैं इसलिए वे तो माता के साथ भी [सहवास के लिए] संयुक्त होते हैं [दूसरी स्त्रियों के साथ क्या कहना?] ॥ १० ॥

सा०—पुत्रिणः पुत्रवन्तो देवमनुष्यादयो विशोकाः = शोकरहिताः सन्तो, यं पन्थानं सुखानुभवरूपं मार्गमाक्रमन्ते प्राप्नुवन्त्येष पन्थाः = पुत्रसुखानुभवरूपो मार्गः, उरुगायः = उरुभिर्महद्भिः शास्त्रज्ञै राजामात्यादिभिश्च गीयते।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तथा सुशेवः = सुष्ठु सेवितुं योग्यः, सुखाधिक्यस्य विद्यमानत्वात्। तं पुत्रसुखानुभवरूपं पशवो गवादयो वयांसि पक्षिणः संपश्यन्ति जानन्ति। तस्मात्ते पशुपक्ष्यादयः पुत्रसुखार्थं मात्रा सह मिथुनीभवन्ति, किं किमुतान्यया स्त्रिया सहेत्यर्थः।

विमर्श—'उरुगाय' का अर्थ सायण ने यहाँ 'बड़े लोगों के द्वारा प्रशंसित' दिया है। दूसरे स्थानों में जहाँ उरुगाय शब्द मार्ग का विशेषण है (जैसे विष्णु के सूक्तों में), वहाँ इसका अर्थ 'उर्वी गतिर्यस्य' (अधिक गति या स्थानवाला, प्रशस्त, चौड़ा) दिया है। आधुनिक विद्वान् यही अर्थ अच्छा समझते हैं। उरु = विशाल, गाय = गति, गमन। √ इ से. गा बनकर घञ् लगा है (निपातन से ही) तथा 'आतो युक् चिण्कृतोः' से युगागम = गायः। सायण √ गै से (गाना) अर्थ लेते हैं—√गै + घञ् = (सन्धि—आयादेश) गाय् + अ = गायः। किन्तु प्राचीनकाल में गमन के अर्थ में ही 'गाय' का बहुधा प्रयोग था, स्वयं सायण भी कहते हैं। सुशेवः = शिवृ (सेवा) से बना है, सुसेव्य, well-trodden, अच्छी तरह जिसपर लोग चल चुके हैं। 'आक्रमन्ते' (आत्मनेपद) का प्रयोग बतलाता है कि इस मार्ग पर ज्योतिःस्वरूप बनकर पुत्रवान् लोग ऊर्ध्वगमन किया करते हैं क्योंकि पाणिनि ने बाद में सूत्रित किया है—आङ उद्गमने (१।३।४०) = ऊपर जाने के अर्थ में ही आङ् + √क्रम् आत्मनेपद होता है, फिर वार्तिककार कहते हैं—'ज्योतिरुद्गमन इति वक्तव्यम्'। इससे ज्योति के अर्थ का बोध होता है। मिथुनीभवन्ति—मिथुन + च्वि + भवन्ति। मार्ग का अर्थ यहाँ पर पुत्र के सुख का अनुभव ही है। पुत्र होने पर सुख के कारण आनन्द ही आनन्द है, अतः ऊर्ध्व-गमन में कोई सन्देह नहीं।

नारदेनोक्तां दशमीं गाथां निगमयति—

इति हास्मा आख्याय ॥ १३ ॥

इतना उस (हरिश्चन्द्र) से कहकर……॥

सा०—हानेनैव प्रकारेणास्मै = तस्मै हरिश्चन्द्राय आख्याय उत्तरमभिधायावस्थित इति शेषः।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

विमर्श—इस स्थान के वाक्य की पूर्ति अगले खण्ड में की गई है—अथैनमुवाच। यहां ३३वें अध्याय का पहला खण्ड समाप्त हुआ, सप्तम-पञ्चिका (३१-३५ अध्याय) के आरम्भ से १३ खण्ड बीत गये, ऐतरेय-ब्राह्मण के आरम्भ से १३६ खण्ड बीते। अस्मै+आख्याय = आयादेश तथा 'लोपः शाकल्यस्य' से य्लोप = अस्मा आख्याय (उससे कहकर)। आख्याय = आङ्+√चक्षिङ्+ल्यप् ('चक्षिङः ख्याञ्' २।४।५४ से ख्या-आदेश)।

इति श्रीमत्सायणाचार्यविरचिते माधवीये वेदार्थप्रकाशे
ऐतरेयब्राह्मणभाष्ये त्रयस्त्रिंशाध्याये प्रथमः
खण्डः ॥ १ ॥ (१३) [१३६]

———

पुत्रनिमित्तलाभप्रतिपादिका नारदोक्ता दश गाथा उदाहृत्य पुत्रजन्मोपायोपदेशपरं नारदवाक्यमवतारयति—

अथैनमुवाच—"वरुणं राजानमुपधाव, पुत्रो मे जायतां, तेन त्वा यजा इति'।"

और तब उससे बोले—वरुण राजा की प्रार्थना करो, मुझे पुत्र उत्पन्न हो तो उससे [मैं] आपका यज्ञ करूं।

सा०—अथ पुत्रेच्छानिमित्तकथनानन्तरमेनं पुत्रार्थिनं हरिश्चन्द्रं नारद उवाच—हे हरिश्चन्द्र! वरुणं राजानमुपधाव=प्रार्थयस्व। येन प्रकारेण निश्चयः सोऽभिधीयते—हे वरुण! त्वत्प्रसादान्मे पुत्रो जायतां, ततस्तेन पुत्रेण त्वां यजै त्वामुद्दिश्य यज्ञं करवाणीति।

विमर्श—उप+√धाव (प्रार्थना करना)। यजा इति = यजै+इति। यजै-√यज्+लोट् उत्तमपुरुष एकवचन, यज्ञ करूँ।

प्रार्थनाप्रकारं नारदोपदेशमुक्त्वा हरिश्चन्द्रवृत्तान्तं दर्शयति—

'तथेति' स वरुणं राजानमुपससार—'पुत्रो मे जायतां, तेन त्वा यजा इति'। 'तथेति' तस्य पुत्रो जज्ञे रोहितो नाम।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

'ऐसा ही हो' [यह कह कर] उसने राजा वरुण की प्रार्थना की—'मुझे पुत्र उत्पन्न हो तो उससे [मैं] आपका यज्ञ करूँ'। 'ऐसा ही हो' [वरुण की इस स्वीकृति के बाद] उसे रोहित नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ।

सा०—नारदोपदेशमङ्गीकृत्य हरिश्चन्द्रो वरुणमुपससार = प्रार्थयामास। स वरुणोऽपि तथास्त्विति तदीयपुत्रोत्पत्त्यै वरं दत्तवान्। तेन च वरेणोत्पन्नस्य रोहित इत्येतन्नामाभूत्।

अथ बहुभिः पर्यायैर्वरुणस्योक्तिर्हरिश्चन्द्रस्य प्रत्युक्तिश्चेत्युभयं प्रतिपाद्यते। तत्र प्रथमं पर्यायं दर्शयति—

तं होवाच—'अजनि वै ते पुत्रो, यजस्व माऽनेनेति'। स होवाच—'यदा वै पशुर्निर्दशो भवत्यथ स मेध्यो भवति, निर्दशो न्वस्त्वथ त्वा यजा इति'। 'तथेति'।

उसे [वरुण ने] कहा—'तुम्हें पुत्र हो गया है, उससे मेरा यज्ञ करो।' उसने (राजा ने) उत्तर दिया—'जब बलि का पात्र (पशु) दस दिनों का हो जाता है तभी यज्ञ के योग्य होता है। उसे दस दिनों का होने दीजिये, तब मैं आपका यज्ञ करूँगा।' [वरुण ने कहा—] 'ऐसा ही हो'।

सा०—तं हरिश्चन्द्रं वरुण उवाच—हे हरिश्चन्द्र ते पुत्रोऽजनि वै = उत्पन्न एव, अनेन पुत्रेण मामुद्दिश्य यागं कुर्विति। एवं वरुणेनोक्ते हरिश्चन्द्रः पुनः प्रत्युवाच—यागार्थः पशुर्यदा निर्दशो भवति, तदा स मेध्यो यागयोग्यो भवति। निर्गतान्यशौचदिनानि दशसंख्याकानि यस्मात्पशोः सोऽयं निर्दशः। तस्मादयं नु क्षिप्रं निर्दशोऽस्तु। अथानन्तरं त्वा प्रत्यहं यजा इत्येतद्वाक्यं वरुणस्तथास्त्वित्यङ्गीचकार।

द्वितीयमुक्तिप्रत्युक्तिपर्यायं दर्शयति—

स ह निर्दश आस। तं होवाच—'निर्दशोऽन्वभूद्, यजस्व माऽनेनेति'। स होवाच—'यदा वै पशोर्दन्ता जायन्तेऽथ स मेध्यो भवति। दन्तान्वस्य जायन्तामथ त्वा यजा इति'। 'तथेति'।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri Funding: MIDF

वह दस दिनों का हो गया। [फिर वरुण ने] उससे कहा—'अब वह दस दिनों का हो गया है, उससे मेरा यज्ञ करो।' उस (राजा) ने उत्तर दिया—'जब बलि-पशु के दाँत उग जाते हैं तभी वह यज्ञ के योग्य होता है। अब इसके दाँत उगने दीजिये, तब आपका यज्ञ करूँगा।' [वरुण ने कहा—] 'ऐसा ही हो'।

सा०—दशदिनशौचापगमे शुद्धत्वाद्यथा यागयोग्यत्वं, तथा दन्तोत्पन्नत्वादवयवसंपूर्त्या यागयोग्यत्वमित्यभिप्रायः। स्पष्टमन्यत्।

तृतीयं पर्यायं दर्शयति—

तस्य ह दन्ता जज्ञिरे। तं होवाच—'अज्ञत वा अस्य दन्ताः, यजस्व माऽनेनेति।' स होवाच—'यदा वै पशोर्दन्ताः पद्यन्तेऽथ स मेध्यो भवति। दन्ता न्वस्य पद्यन्तामथ त्वा यजा इति।' 'तथेति'।

उसके दाँत उग आये। [फिर वरुण ने] उससे कहा—'अब तो इसके दांत उग आये, इससे मेरा यज्ञ करो।' उसने उत्तर दिया—'जब बलि-पशु के दाँत गिर जाते हैं, तभी वह यज्ञ के योग्य होता है। अभी इसके दांत गिरने दीजिये, तब मैं आपका यज्ञ करूँगा।' [वरुण ने कहा—] 'ऐसा ही हो।'

सा०—अज्ञत वै=जाता एव। पद्यन्ते=पतन्ति। प्रथमोत्पन्नानां दन्तानामस्थायित्वेन मुख्यपश्ववयवत्वाभावात्तत्पाते सति पशोर्मेध्यत्वम्।

विमर्श—अज्ञत=√जन्+लुङ् (झ), च्लि का लोप 'मन्त्रे घसह्वरणश०' से। देखिये सिद्धान्तकौमुदी, वैदिकी-प्रक्रिया सूत्र सं० १६। 'पद्यन्ते' में √पद् (गिरना) जो √पत् का पर्याय है। संस्कृत में √पद् का अर्थ चलना है। यह वैदिक-विकृति का सूचक है। इन स्थानों में 'नु' निपात का अर्थ 'अभी (now)' ही है।

चतुर्थं पर्यायं दर्शयति—

तस्य ह दन्ताः पेदिरे। तं होवाच—'अपत्सत वा अस्य दन्ताः, यजस्व माऽनेनेति।' स होवाच—'यदा वै पशोर्दन्ताः

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पुनर्जायन्तेऽथ स मेध्यो भवति । दन्ता न्वस्य पुनर्जायन्तामथ त्वा यजा इति' । 'तथेति' ।

उसके दाँत भी गिर गये। [फिर वरुण ने] उससे कहा—इसके तो दाँत भी अब गिर गये, इससे मेरा यज्ञ करो।' उसने उत्तर दिया—'जब बलिपशु के फिर से उग आते हैं तभी वह यज्ञ के योग्य होता है। अब अब इसके दाँत फिर से उग आयें, तब मैं आपका यज्ञ करूँगा।' [वरुण ने कहा—] 'ऐसा ही हो'।

सा०—अपत्सत वै=पतिताः। पुनरुत्पन्नानां दन्तानां स्थिरत्वेन सम्पूर्णावयवत्वात्पशोर्मेध्यत्वम्।

पञ्चमं पर्यायं दर्शयति—

तस्य ह दन्ताः पुनर्जज्ञिरे। तं होवाच—'अज्ञत वा अस्य पुनर्दन्ताः, यजस्व माऽनेनेति।' स होवाच—'यदा वै क्षत्रियः सांनाहुको भवत्यथ स मेध्यो भवति। संनाहं नु प्राप्नो-त्वथ त्वा यजा इति।' 'तथेति'।

उसके दाँत फिर उग आये। [वरुण ने फिर] उससे कहा—'अब तो इसके दाँत फिर से उग आये हैं, इससे मेरा यज्ञ करो।' उसने उत्तर दिया—'जब क्षत्रिय शस्त्र धारण करने के योग्य बनता है, तभी वह यज्ञ के योग्य होता है। अभी वह शस्त्र-धारण के योग्य बने, तब मैं आपका यज्ञ करूँगा।' [वरुण ने कहा—] 'ऐसा ही हो।'

सा०—अज्ञत वै=जाता एव। पश्वन्तरस्य पुनर्दन्तोत्पत्तिमात्रेण मेध्यत्वेऽप्यस्य पशोः क्षत्रियत्वात्स्वजात्युचितधनुर्बाणकवचादिसंनाहशीलित्वे सति जात्युचितव्यापारसंपूर्तौ मेध्यत्वम्। तस्मान्नु क्षिप्रमेवासौ संनाहं प्राप्नोत्यनन्तरमेव यजा इत्युत्तरं वरुणोऽङ्गीचकार।

विमर्श—संनाह=सम्+√नह्+घञ् (कवच, अंगत्राण)। तुलना करें—महाभारत (४।३०।१७) में—पृथक् काञ्चनसन्नाहान् रथेष्वश्वानयोजयन्। कहीं-कहीं इसका अर्थ 'उद्योग' भी है जैसे रामायण में—

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri Funding: MIDF

ततो रामशरान् दृष्ट्वा विमानेषु गृहेषु च।
सन्नाहो राक्षसेन्द्राणां तुमुलः समपद्यत ॥ (६।७५।४०)।

किसी भी अवस्था में हरिश्चन्द्र की इच्छा थी कि रोहित उद्योग करने लायक या कवच धारण करने लायक बन जाय तभी इसमें क्षत्रियत्व आवेगा। संनाह + उकञ् = सांनाहुकः ।

षष्ठं पर्यायं दर्शयति—

स ह संनाहं प्रापत् । तं होवाच—'संनाहं नु प्राप्नोद्यजस्व माऽनेनेति ।' स 'तथेति' उक्त्वा पुत्रमामन्त्रयामास—'तत, अयं वै मह्यं त्वामददाद्, हन्त त्वाऽहमिमं यजा इति ।'

उसने कवच (शस्त्र) धारण कर लिया। [वरुण ने फिर] उससे कहा—'अब तो उसने कवच धारण कर लिया, इससे मेरा यज्ञ करो।' 'ऐसा ही हो' कहकर उसने पुत्र को बुलाया [और कहा—] 'हे पुत्र, इन्होंने ही तुम्हें मेरे लिए दिया था; हाय ! किन्तु मैं तुमसे इसका यज्ञ करूँगा।'

सा०—संनाहप्राप्तेरूर्ध्वं स हरिश्चन्द्रो वरुणोक्तिमङ्गीकृत्य पुत्रमामन्त्र्यैवमुवाच। उपलालनार्थं पुत्रे पितृवाचिततशब्दप्रयोगः। हे तत, हे पुत्र, अयमेव वरुणो मह्यं त्वां पुत्रवरेण दत्तवान्। हन्त, दुष्टोऽहमिमं वरुणं यत्त्वया पुत्रेण यजै यागरूपां पूजां करवाणीति हरिश्चन्द्रस्योक्तिः।

अथ रोहितनाम्नः पुत्रस्य कृत्यं दर्शयति—

स ह नेत्युक्त्वा धनुरादायारण्यमुपातस्थौ । स संवत्सरमरण्ये चचार ॥१४॥

'नहीं' ऐसा कहकर [वह रोहित] धनुष लेकर वन में चला गया। वर्ष भर वह वन में घूमता रहा।

सा०—स ह स खलु रोहिताख्यः पुत्रः पितुर्वाक्यं निषिध्य रक्षणार्थं धनुः स्वीकृत्यारण्यं प्रत्युपगतोऽभूत्। कस्मिंश्चिदरण्ये नैरन्तर्येण स रोहितः संवत्सरं चचारेति।

इति श्रीमत्सायणाचार्यविरचिते माधवीये वेदार्थप्रकाश ऐतरेयब्राह्मणभाष्ये त्रयस्त्रिंशाध्याये द्वितीयः खण्डः ॥२॥ (१४) [१३७]।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

रोहितस्यारण्ये संवत्सरचरणानन्तरं (भाविनं हरिश्चन्द्रादीनां वृत्तान्तं दर्शयति—

अथ हैक्ष्वाकं वरुणो जग्राह। तस्य होदरं जज्ञे। तदु ह रोहितः शुश्राव। सोऽरण्याद् ग्राममेयाय। तमिन्द्रः पुरुषरूपेण पर्येत्योवाच—

'नानाश्रान्ताय श्रीरस्तीति रोहित शुश्रुम।
पापो नृषद्वरो जन इन्द्र इच्चरतः सखा ॥१॥

चरैवेति।'

अब वरुण ने ऐक्ष्वाक (हरिश्चन्द्र) को ही पकड़ा। उड़का पेट बढ़ गया (महोदर-रोग हो गया)। इसे रोहित ने सुना। वह बन से गाँव में लौटा। उसके पास इन्द्र पुरुष के रूप में जाकर बोले—'अश्रान्त व्यक्ति को संपत्ति नहीं मिलती (अथवा, श्रान्त व्यक्ति को नाना प्रकार की संपत्ति मिलती है)—हे रोहित, ऐसा हम लोग सुनते हैं। अच्छा आदमी भी मनुष्यों के बीच रहने पर पापी हो जाता है। भ्रमणशील व्यक्ति के मित्र इन्द्र भी हैं ॥१॥ इसलिए घूमते ही रहो।

सा०—अथ रोहितस्यारण्ये संवत्सरवासानन्तरमेवैक्ष्वाकमिक्ष्वाकुवंशोत्पन्नं हरिश्चन्द्रं वरुणो देवो रोगरूपेण जग्राह। वरुणेन गृहीतस्य हरिश्चन्द्रस्योदरं जज्ञे। जलेन पूरितमुच्छूनं महोदरनामकं रोगस्वरूपमुत्पन्नम्। तदु ह तदपि सर्वमरण्ये स्थितो रोहितः पुत्रो मनुष्यमुखाच्छुश्राव। श्रुत्वा च स रोहितः पितरं द्रष्टुमरण्याद् ग्रामं प्रत्याजगाम। आगच्छन्तं रोहितं मार्गमध्ये इन्द्रः केनचिद् ब्राह्मणपुरुषरूपेण प्राप्य इदमुक्तवान्। आ=समन्तात् श्रान्तः आश्रान्तः, सर्वत्र पर्यटनेन श्रान्तिं प्राप्तः, तद्विपरीतोऽनाश्रान्तः=एकत्रैव निवासशीलः—तादृशाय। तथाविधस्य पुरुषस्य श्रीः बहुविधा संपत् नास्ति। यद्वा, नानेति पदच्छेदः। श्रान्ताय=सर्वत्र पर्यटनेन श्रान्तस्य, नाना श्रीर्बहुविधा संपदस्तीत्यनेन प्रकारेण रोहित! वयं नीतिकुशलानां पुरुषाणां मुखाच्छुश्रुम। वरो जनो विद्यादिभिः श्रेष्ठोऽपि पुरुषो नृषत्पापो, नृषु मनुष्येषु सीदतीति नृषत्। श्रेष्ठोऽपि बन्धुगृहेषु सर्वदावस्थितः, तैरवज्ञातः पापस्तुच्छो भवेत्। अतस्तव पितृगृहे वासो न युक्तः। न चारण्ये

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri Funding: MIDF

चरतो मम सहायो नास्तीति शङ्कनीयम्। इन्द्र एव, परमेश्वर एव चरतस्तव सखा भविष्यति। तस्माच्चरैव सर्वथाऽरण्ये चरस्वेत्येवमुवाच। एवं बहुष्वपि पर्यायेषु द्रष्टव्यम्।

विमर्श—जल के राजा वरुण ने हरिश्चन्द्र के पेट को ही बड़ा कर दिया तथा जलोदर रोग के लक्षण आयुर्वेद में इस प्रकार हैं—

य: स्नेहपीतोऽप्यनुवासितोऽपि वान्तो विरिक्तोऽप्यथवा निरूढः।'
पिबेज्जलं शीतलमाशु तस्य स्रोतांसि दुष्यन्ति हि तद्वहानि॥
स्नेहोपलिप्तेष्वथवापि तेषूदकोदरं पूर्ववदभ्युपैति।
स्निग्धं महत्तत्परिवृत्तनाभि समाततं पूर्णमिवाम्बुना च॥
यथा दृतिः क्षुभ्यति कम्पते च शब्दायते चापि दकोदरं तत्॥
(शब्दकल्पद्रुमः, पृष्ठ २३२)

हरिश्चन्द्रोपाख्यान में इस स्थान के श्लोकों में घुमक्कड़ शास्त्र के मूल मंत्र हैं। चरैवेति कहकर भ्रमण की बड़ी महिमा बतलाई गई है। 'नानाश्रान्ताय श्रीरस्ति' के दो तरह से पदच्छेद किये गये हैं—न अनाश्रान्ताय श्रीः अस्ति (जो घूमते-घूमते थक नहीं जाय उसे संपत्ति नहीं मिलती) नानाश्रान्ताय श्रीः अस्ति (थके हुए व्यक्ति को कई प्रकार की संपत्ति मिलती है)। दोनों का लक्ष्य समान है। नृषद्=नरों में बैठा रहने वाला (नृ+√सद्+क्विप्—सत्सूद्विष०' ३।२।६१)। मनोविज्ञान भी कहता है कि मनुष्यों के संसर्ग से बहुत-सी असत् प्रवृत्तियाँ उत्पन्न होती हैं। सत्प्रवृत्ति भी आती है पर असत् की अपेक्षा अत्यल्प ही।

तत्रेन्द्र-रोहितसंवादे प्रथमं पर्यायं दर्शयित्वा द्वितीयं पर्यायं दर्शयति।

'चरैवेति' वै मा ब्राह्मणोऽवोचदिति ह द्वितीयं संवत्सरमरण्ये चचार। सोऽरण्याद् ग्राममेयाय। तमिन्द्रः पुरुषरूपेण पर्येत्योवाच—

पुष्पिण्यौ चरतो जङ्घे भूष्णुरात्मा फलग्रहिः।
शेरेऽस्य सर्वे पाप्मानः श्रमेण प्रपथे हताः॥२॥
चरैवेति।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

घूमते ही रहो ऐसा मुझे ब्राह्मण ने कहा है, इसलिए वह दूसरे वर्ष में भी वन में घूमता रहा। [अन्त में] वन से वह गाँव में आया। उसके पास इन्द्र पुरुष के रूप में जाकर बोले--'भ्रमणशील व्यक्ति के पैर (जंघा-चरण एँड़ी या जाँघ) फूल के समन (=हल्के) हो जाते हैं, शरीर (आत्मा=मध्यदेह) की वृद्धि होती है तथा फल (आरोग्य) प्राप्त होता है। इसके सभी पाप नष्ट हो (सो) जाते हैं क्योंकि कठिन मार्ग के श्रम से वे (पाप) समाप्त हो जाते हैं ॥२॥ इसलिये घूमते ही रहो।'

सा०—ब्राह्मणरूपस्येन्द्रस्य वाक्यं श्रुत्वा ब्राह्मणोऽयमरण्ये चरैवेत्येवं मामुक्तवानिति मनसि ब्राह्मणवाक्ये महान्तमादरं कृत्वा पुनरप्येकं संवत्सरमरण्ये चरित्वा पश्चात्पितरं द्रष्टुं ग्रामं तमागच्छन्तं पुनरपीन्द्रो ब्राह्मणरूपेणागत्यैवमुवाच। चरतः=पर्यटनं कुर्वतः पुरुषस्य, जङ्घे पुष्पिण्यौ भवतः। यथा पुष्पयुक्तो वृक्षः शाखा लतां वाऽथवा सुगन्धोपेता सेव्या भवत्येवं चरतो जङ्घे श्रमजयेन सेव्ये भवतः। तथैवात्मा मध्यदेहो भूष्णुर्वर्धिष्णुः फलग्रहिरारोग्यरूपफलयुक्तो भवति। यथा वर्धमानो वृक्षः कालेन फलानि गृह्णात्येवं चरतः पुरुषस्य बीजादिदीपनादिपाटवेन मध्यदेह आरोग्यरूपं फलं गृह्णाति। तथैवास्य चरतः पुरुषस्य सर्वे पाप्मानः सर्वपापानि प्रपथे प्रकृष्टे तीर्थक्षेत्रादिमार्गे श्रमेण तत्तद्देवतादिदर्शने तीर्थयात्रादिप्रयासेन हता विनाशिताः सन्तः शेरे शेरते, शयाना इव भवन्ति। यथा शयानाः पुरुषाः स्वकार्यं कृषिवाणिज्यादिकं कर्त्तुमशक्ता एवं पुण्येन विनष्टाः पाप्मानो नरकं दातुमसमर्था इत्यर्थः। तस्मात्सर्वथाऽरण्ये चर, न पितुर्गृहेऽवतिष्ठस्व।

विमर्श—भूष्णुः =√भू+क्स्नु। 'भुवश्च' 'ग्लाजिस्थश्च क्स्नुः' (३। २। १३८-९)। तच्छील आदि अर्थों में√भू से क्स्नु प्रत्यय होता है। कित् होने के कारण गुणनिषेध (क्ङिति च १।१।५) तथा इट् के आगम का निषेध (श्र्युकः किति ७।२।११)। इस सूत्र में गकार का भी निर्देश है जिससे भूष्णुः की सिद्धि होती है। वृत्तिकार कहते हैं—केचिदत्र द्विककारनिर्देशेन गकारप्रश्लेषं वर्णयन्ति। भूष्णुरित्येवं यथा स्यात् (पृ० ६३१)। अभिप्राय यह है 'ग्लाजिस्थश्च क्स्नुः' सूत्र में क्स्नु प्रत्यय को कित् न मानकर गित् मान लिया गया है जिससे √स्था में ईकार रोककर

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

('घुमास्थागापाजहातिसां हलि' से प्राप्त था) स्थास्नुः बनाया जाय। अब समस्या यह हो गई कि 'क्स्नु' प्रत्यय तो गित् हो गया 'श्र्युकः किति' की प्राप्ति यहाँ पर √भू+क्स्नु में कैसे होगी? इसलिए 'किति' में ग् को भी छिपा हुआ (सटा हुआ, प्रश्लिष्ट) मानते हैं जिससे √भू को होने वाला इट् मिट जाय। 'श्र्युकः किति' का अब अर्थ हुआ कि √श्रि तथा उगन्त धातुओं के पर में यदि कित् (और गित्) प्रत्यय हों तो इट् का आगम नहीं होता। √भू उगन्त (उ ऋ लृ से अन्त होनेवाला) धातु है ही।

फलग्रहिः = फलं गृह्णाति इति। फल+ग्रह्+इन्। संस्कृत में 'फलेग्रहिः' शब्द निपातन से सिद्ध होता है जिसके लिए पाणिनि का सूत्र है 'फलेग्रहि-रात्मम्भरिश्च' (३।२।२६)। फलग्रहिः वैदिक-व्यत्यय का ही उदाहरण है। शेरे =√शीङ्+झ (अते)। रुडागम (शीङो रुट्) तथा गुण—होना चाहिए पर बाहुलक से त का लोप हो गया है।

भ्रमणशील व्यक्ति के पैर हल्के रहते हैं, शरीर से अच्छा काम हो सकता है, व्यायाम हो जाता है तथा शरीर के सभी रोग नष्ट हो जाते हैं। कहा भी है—

व्यायामक्षुण्णगात्रस्य पद्भ्यामुद्वर्तितस्य च।
व्याधयो नोपसर्पन्ति वैनतेयमिवोरगाः॥

तृतीयं पर्यायं दर्शयति—

'चरैवेति' वै मा ब्राह्मणोऽवोचदिति ह तृतीयं संवत्सरमरण्ये चचार। सोऽरण्याद् ग्राममेयाय। तमिन्द्रः पुरुषरूपेण पर्येत्योवाच—

'आस्ते भग आसीनस्योर्ध्वस्तिष्ठति तिष्ठतः।
शेते निपद्यमानस्य चराति चरतो भगः॥ ३॥
चरैवेति।'

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

'घूमते ही रहो', मुझे ब्राह्मण ने ऐसा कहा है, इसलिए (यह सोचकर) वह तीसरे वर्ष भी वन में घूमता रहा। (फिर) वह वन से गाँव में आया। (तब) इन्द्र उसके पास पुरुष के रूप में जाकर बोले—'बैठे हुए (व्यक्ति) का भाग्य भी बैठा ही रहता है (नहीं बढ़ता), खड़े हुए (व्यक्ति) का [भाग्य] ऊपर (= वृद्धि के उन्मुख) खड़ा रहता है, पड़े हुए (सोये हुए) का [भाग्य] सोया ही रहता है लेकिन भ्रमणशील (व्यक्ति) का भाग्य चलता (बढ़ता) रहता है ॥ ३ ॥ इसलिए घूमते ही रहो।'

सा०—भगः= सौभाग्यमासीनस्य = उपविष्टस्य आस्ते = तथैव तिष्ठति, न तु वर्धते। अभिवृद्धिहेतोरुद्योगस्याभावात्। तिष्ठतः=उपवेशनं परित्यज्योत्थापनं कुर्वतः पुरुषस्य भगः=ऊर्ध्वोऽभिवृद्धेरुन्मुखस्तिष्ठति। कृषिवर्त्तावाणिज्याद्युद्योगस्य संभावितत्वात्। निपद्यमानस्य। भूमौ शयानस्य भगः शेते = निद्रां करोति। विद्यमानधनरक्षादिचिन्ताया अप्यभावात् सर्वथैव विनश्यति। चरतस्तेषु तेषु देशेष्वर्जनार्थं पर्यटनं कुर्वतः पुरुषस्य भगः सौभाग्यं चरति = दिने दिने वर्धते। तस्मात्त्वं चरैवेति, न तु एकत्र तिष्ठ।

चतुर्थं पर्यायं दर्शयति—

'चरैवेति' वै मा ब्राह्मणोऽवोचदिति ह चतुर्थं संवत्सरमरण्ये चचार। सोऽरण्याद् ग्राममेयाय। तमिन्द्रः पुरुषरूपेण पर्येत्योवाच—

'कलिः शयानो भवति संजिहानस्तु द्वापरः।
उत्तिष्ठंस्त्रेता भवति कृतं संपद्यते चरन् ॥४॥

चरैवेति।'

'घूमते ही रहो' मुझे ब्राह्मण ने ऐसा कहा है, [यह सोचकर] चौथे वर्ष भी वह वन में ही घूमता रहा। (अन्त में) वह वन से गाँव में आया। इन्द्र उसके पास पुरुष के रूप में जाकर बोले—'सोया हुआ रहने पर [आदमी] कलि होता है, अँगड़ाई लेने पर द्वापर तथा उठ खड़ा होने

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पर त्रेता होता है किन्तु चलने पर ही कृत-सम्पन्न होता है ॥ ४ ॥ इसलिए घूमते ही रहो।'

सा०—चतस्रः पुरुषस्यावस्थाः। निद्रा, तत्परित्यागः, उत्थानं, संचरणं चेति, ताश्चोत्तरश्रेष्ठत्वात्कलिद्वापरत्रेताकृतयुगैः समानाः। ततश्चरणस्य सर्वोत्तमत्वाच्चरैवेति।

विमर्श—सायणाचार्य ने यहाँ पर कलि, द्वापर, त्रेता और कृत का नाम देखकर इन्हें युगों के अर्थ में ले लिया है—नींद कलियुग के समान है, निद्रात्याग (hovering) द्वापर के समान, उठ खड़ा होना त्रेतायुग के समान और चलने लगना कृतयुग के समान। सबसे अच्छा कृतयुग ही है, इसलिए चलने को समर्थन प्राप्त है। इस व्याख्या का समर्थन मैक्समूलर ने Ancient Sanskrit literature (पृ० ४१२) में तथा वेबर ने Indischen Studien (खं० ६, पृ० ३१५) में किया है। किन्तु युगों का नाम वैदिक-साहित्य में नहीं है। ये नाम जुए के पासों (dice) के थे जैसा कि रॉथ और भोटलिंक ने अपने शब्दकोष (Petersburg Lexicon) में दिखाया है। उसके अनुसार इस गाथा का अर्थ मार्टिन हॉग ने अपने अनुवाद-खंड में पृ० ४६४ की पाद-टिप्पणी में दिया है—'पूरी सफलता की आशा है; अभागा पासा कलि पड़ा हुआ है, दूसरे दो पासे धीरे-धीरे चल रहे हैं या आधा गिरे ही हैं, किन्तु सबसे बड़ा भाग्यवान् कृत पूरी गति में है।'* पासों की उक्त अवस्थिति से विजय की पूरी आशा है। किन्तु यह अर्थ इस प्रसंग में ठीक नहीं बैठता, इन्द्र खेल दिखा नहीं रहे थे कि विजय की पूरी आशा की जा सकती थी। वास्तव में पासों के पारस्परिक तारतम्य की उपमा दी गई है—सोया हुआ व्यक्ति कलि नामक अभागे पासे की तरह है, अँगड़ाई लेने वाला द्वापर की तरह, उठनेवाला त्रेता की तरह और

* There is every success to be hoped; for the unluckiest die, the KALI, is lying, two others are slowly moving and half fallen, but the luckiest the KRITA, is in full motion.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

भ्रमणशील व्यक्ति ही कृत नामक भाग्यवान् पासे के स्तर को पाता है (संपद्यते)। इसलिए भ्रमण महत्त्वपूर्ण है।

पञ्चमं पर्यायं दर्शयति—

'चरैवेति' वै मा ब्राह्मणोऽवोचदिति ह पञ्चमं संवत्सरमरण्ये चचार सोऽरण्याद् ग्राममेयाय। तमिन्द्रः पुरुषरूपेण पर्येत्योवाच—

चरन्वै मधु विन्दति चरन् स्वादुमुदुम्बरम्।
सूर्यस्य पश्य श्रेमाणं यो न तन्द्रयते चरन् ॥ ५ ॥

चरैवेति— ध्री ७५५१

'घूमते ही रहो' ऐसा मुझे ब्राह्मण ने कहा है [यह सोचकर] वह पाँचवें वर्ष भी वन में घूमता रहा। (अन्त में) वन से वह गाँव में आया। इन्द्र पुरुष रूप में उसके पास आकर बोले—'भ्रमण करते-करते ही [आदमी] मधु पाता है और भ्रमण करते-करते ही सुस्वादु उदुम्बर (गूलर) का फल पाता है (इन अन्य वस्तुओं के समान ही कितने भोग्य पदार्थों की प्राप्ति करता है)। सूर्य की श्रेष्ठता तो देखो, जो चलते-चलते [कभी] आलस्य नहीं करते ॥ ५ ॥ इसलिए घूमते ही रहो।'

सा०—चरन्नेव पुरुषः क्वचिद् वृक्षाग्रे मधु माक्षिकं लभते। क्वचित्स्वादु मधुरमुदुम्बरादिफलविशेषं लभते। एतदुभयमुपलक्षणम्। तत्र तत्र विद्यमानं भोगविशेषं लभते। तत्र सूर्यो दृष्टान्तः। यः सूर्यः सर्वत्र चरन्नपि न तन्द्रयते = कदाचिदप्यलसो न भवति, तस्य सूर्यस्य श्रेमाणं श्रेष्ठत्वं जगद्वन्द्यत्वं पश्य। तस्माच्चरैव।

इत्थमिन्द्रकृतेन रोहितोपदेशेन चरतो रोहितस्य स्वजीवने पितुरारोग्ये च कारणभूतं श्रेयोलाभं दर्शयति—

'चरैवेति' वै मा ब्राह्मणोऽवोचदिति ह षष्ठं संवत्सरमरण्ये चचार। सोऽजीगर्तं सौयवसिमृषिमशनया परीतमरण्य उपेयाय।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

'घूमते ही रहो' ऐसा मुझे ब्राह्मण ने कहा है [यह सोचकर] वह छठे वर्ष भी वन में घूमता रहा। वन में उसने सूयवस के पुत्र अजीगर्त ऋषि को पाया जो भोजन की इच्छा (बुभुक्षा) से ग्रस्त था (भूखा था)।

षष्ठे संवत्सरे पूर्ववदरण्यसंचारी स ह रोहितः कंचिदृषिं तस्मिन्नरण्य उपेयाय प्राप्तवान्। कीदृशमृषिम्? अजीगर्तनामकं सूयवसस्य पुत्रमशनया परीतमन्नालाभेन क्षुत्पीडितम्।

विमर्श—'अशनया परीतम्' वैदिक-भाषा की विचित्रता का सूचक है। अशनम् आत्मनः इच्छति—अशन + क्यच्। 'अशनायोदन्यधनाया बुभुक्षा-पिपासागर्द्धेषु' (७।४।३४) के अनुसार 'अशनाय' (निपातन से)+तिप् =अशनायति। इससे संज्ञा बनेगी—अशनाय्+अङ्+टाप्=अशनाया (=बुभुक्षा)। तृतीया एक व० में 'अशनायया' जिसमें वैदिक-भाषा में आकार तथा एक यकार का लोप कर दिया गया है। दूसरी तरह भी इसकी सिद्धि हो सकती है—अशनाय्+अङ्=टाप् करने पर क्यच् का ही वैभाषिक लोप हो गया तथा 'अशना' बना जिसका अर्थ होगा बुभुक्षा। इसी से तृतीया में हुआ—अशनया। फिर भी यहाँ भाषा का वैचित्र्य दर्शनीय है।

<u>अथाजीगर्तरोहितयोः संवादं दर्शयति—</u>

तस्य ह त्रयः पुत्रा आसुः—शुनःपुच्छः, शुनःशेपः, शुनोलाङ्गूल इति। तं होवाच—ऋषेऽहं ते शतं ददाम्यहम्, एषामेकेनात्मानं निष्क्रीणा इति।' स ज्येष्ठं पुत्रं निगृह्णान उवाच—'न न्विममिति।' नो एवेममिति' इति कनिष्ठं माता। तौ ह मध्यमे संपादयांचक्रतुः शुनःशेपे। तस्य ह शतं दत्त्वा स तमादाय सोऽरण्याद् ग्राममेयाय।

उसके तीन पुत्र थे—शुनःपुच्छ, शुनःशेप और शुनोलांगूल। उस (रोहित) ने (अजीगर्त से) कहा—'हे ऋषे, मैं आपको एक सौ (गायें) देता हूँ, इन (पुत्रों) में से किसी एक के द्वारा अपने को [वरुण से] मुक्त कर लूँ (redeem, ransom)।' वह (अजीगर्त) बड़े लड़के को पकड़कर

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

बोला—'इसे नहीं'। 'इसे भी नहीं' इस प्रकार छोटे पुत्र को माता ने [पकड़ लिया]। उन दोनों ने बीचवाले शुनःशेप को ही [बेचने का] निश्चय किया। उसके लिए एक सौ [गायें] देकर, उसे लेकर, वह वन से गाँव में लौट आया।

सा०—तस्याजीगर्तस्य शुनःपुच्छादिनामकास्त्रयः पुत्रा आसुः। पुत्रवन्तमृषिं रोहित उवाच—हे ऋषे! ते तुभ्यमहं गवां शतं ददामि। (दत्त्वा चाहमेषां पुत्राणां मध्य एकेन केनचित्पुत्रेणात्मानं मद्देहं वरुणान्निष्क्रीणे मूल्यं दत्त्वाऽऽत्मानं मोचयामीति। एवमुक्तः सोऽजीगर्तो) ज्येष्ठं पुत्रं शुनःपुच्छनामकं हस्तेन निगृह्णानः स्वसमीपे समाकर्षन् रोहितं प्रत्येवमुवाच। तुभ्यमेकः पुत्रो दीयत, इमं तु शुनःपुच्छं तु न ददामि, मम प्रियत्वादिति। ततो माता कनिष्ठं हस्तेन गृहीत्वैवमुवाच—इमं शुनोलाङ्गूलं मम प्रियं नो एव सर्वथा न ददामीति। ततस्तावुभौ मातापितरौ मध्यमे पुत्रे शुनःशेपे दानं संपादयांचक्रतुरङ्गीकृतवन्तौ। ततस्तस्याजीगर्तस्य स रोहितो गवां शतं दत्त्वा तं शुनःशेपमादायावस्थितः। ततः स रोहितस्तेन शुनःशेपेन सहारण्यात्स्वकीयं ग्रामं प्रत्याजगाम।

तदागमनादूर्ध्वकालीनं (? कालिकं) वृत्तान्तं दर्शयति—

स पितरमेत्योवाच—'तत, हन्त, अहमनेनात्मानं निष्क्रीणा इति।' स वरुणं राजानमुपससार—'अनेन त्वा यजा इति'। 'तथेति' 'भूयान्वै ब्राह्मणः क्षत्रियादिति' वरुण उवाच। तस्मा एतं राजसूयं यज्ञक्रतुं प्रोवाच। तमेतमभिषेचनीये पुरुषं पशुमालेभे ॥१५॥

वह पिता के पास आकर बोला—'पिताजी, इसके द्वारा मैं अपने को मुक्त करता हूँ।' वह (हरिश्चन्द्र) राजा वरुण के पास गया [और बोला]—'इसके द्वारा आपका मैं यज्ञ करूँगा।' वरुण बोले—'ऐसा ही हो, ब्राह्मण तो क्षत्रिय की अपेक्षा अच्छा है।' उससे [वरुण ने] इस राजसूय यज्ञ के कर्मों

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

का वर्णन किया। अभिषेक के दिन इस पुरुषरूपी बलिपशु को उन्होंने लिया (उसके आलंभन या बलिदान का आदेश दिया) ॥१५॥

सा०—स रोहितः पितरमागत्यैवमुवाच—हे तत पितः, हन्त=आवयोर्हर्षः संपन्नः। अहमनेन शुनःशेपरूपेण मूल्येन आत्मानं मद्देहं वरुणान्निष्क्रीणे मूल्यं दत्त्वात्मानं मोचयामीत्यर्थः। तथोक्ते स हरिश्चन्द्रो वरुणमुपेत्यानेन शुनः-शेपेन ब्राह्मणेन त्वा त्वां यक्ष्यामीति उक्तवान्। स वरुणोऽपि 'तथेति' अङ्गी-कृत्यैवमुवाच—क्षत्रियात्तव पुत्राद्रोहितादप्ययं ब्राह्मणो भूयानभ्यधिक एव, मम प्रिय इति। उक्त्वा तस्मै हरिश्चन्द्राय कर्तव्यत्वे राजसूयमुपदिदेश च। स हरिश्चन्द्रो राजसूयं प्रक्रम्य तस्य मध्ये योऽयमभिषेचनीयाख्य एकाहःसोम-यागस्तस्मिंस्तमेतं शुनःशेपं पुरुषं पशुमालेभे सवनीयपशुत्वेनालब्धुं निश्चितवान्।

विमर्श—'इन्द्र' यहाँ पर हर्ष का सूचक है। वरुण ने राजा हरिश्चन्द्र को राजसूय यज्ञ करने का आदेश दिया जिसमें शुनःशेप की बलि अभिषेक या सोमयाग के दिन दी जाय। राजसूय का सम्पादन इसके बाद बतलाया जायगा। यज्ञक्रतुः=यज्ञ का कर्म, नियम. 'क्रतु' का अर्थ संस्कृत में 'यज्ञ' हो गया है पर ऋग्वेद-संहिता में कहीं भी इसका यह अर्थ नहीं है। वहां क्रतु का अर्थ बल है जैसे—महस्तव क्रतुं परः (ऋ १।१६।२)। ग्रीक में KrATos=शरीर-बल बुद्धि-बल। अवेस्ता में Khratu (धातु Kar=बुद्धि) बुद्धि। 'शतक्रतुः इन्द्रः' का अर्थ होता है 'सौ आदमियों का बल धारण करने वाले इन्द्र।' यहां पर (हरिश्चन्द्रोपाख्यान में) अर्थ-परिवर्तन का उदाहरण है जिससे क्रतु का अर्थ 'बुद्धि' से होते हुए 'नियम' पर चला आया क्योंकि बुद्धि से ही नियम या कर्तव्य निर्धारित होते हैं। अभिषेक के दिन को सोमयाग का दिन भी कहते हैं।

इति श्रीमत्सायणाचार्यविरचिते माधवीये वेदार्थप्रकाशे
ऐतरेयब्राह्मणभाष्ये त्रयस्त्रिंशाध्याये तृतीयः
खण्डः ॥३॥ (१५) [१३८]

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

हरिचन्द्रस्य राजसूयानुष्ठानं दर्शयति—

तस्य ह विश्वामित्रो होताऽऽसीत्, जमदग्निरध्वर्युर्वसिष्ठो ब्रह्मअयास्य उद्गाता। तस्मा उपाकृताय नियोक्तारं न विविदुः स होवाचाजीगर्त्तः सौयवसिः—मह्यमपरं शतं दत्त अहमेनं नियोक्ष्यामीति'। तस्मा अपरं शतं ददुः। तं निनियोज।

उस (यज्ञ) के होता विश्वामित्र बने, जमदग्नि अधर्यु वसिष्ठ ब्रह्मा तथा अयास्य (ऋषि। उद्गाता [बने]। [शुनःशेप जब यज्ञभूमि में] स्वीकृत किया गया तब उसे बाँधनेवाले कोई नहीं मिले। [तब] सौयवसि अजीगर्त (शुनःशेप के पिता) ही बोले—मुझे और (अपर > अवर > अउर > और) एक सौ दीजिए, मैं इसे बांध दूँगा। उसे एक सौ (गायें) और दी गई। उसने उसे बाँध दिया।

सा०—विश्वामित्रादयो महर्षयस्तस्य हरिश्चन्द्रस्य यागे राजसूये होत्रादयश्चत्वारो महर्त्विज आसन्। तत्र जमदग्निरध्वर्युः अभिषेचनीये सोमयागे तं शुनःशेपं सवनीयपशुत्वेन उपाकृतवान्। बर्हियुक्तया प्लक्षशाखया मन्त्रपुरःसरं समुपस्पृश्य स्वीकार उपाकरणम्। तत ऊर्ध्वं यूपबन्धनं नियोजनम्। तस्यक्रूर कर्मत्वादध्वर्युर्न नियोजने प्रवृत्तः। तत उपाकृतायास्मै उपाकरणेन संस्कृतस्य शौ (शु)-नःशेपस्य नियोक्तारं यूपे बन्धनकर्तारं क्रूरं कंचिदपि पुरुषं न विविदुः=न लेभिरे। तदानीं सूयवसस्य पुत्रः शुनःशेपस्य पिता सोऽजीगर्त्त [उवाच] मह्यं पूर्वस्माच्छतादपरं गोशतं हे यजमानर्त्विजः] दत्त। ततोऽहमेनं शुनःशेपं यूपे नियोक्ष्यामि=रशनया कट्यां शिरसि पादयोर्बद्ध्वा रशनाग्रस्य यूपे बन्धनं नियोजनं तदहं करिष्यामीति। तस्मा अजीगर्ताय अपरं गोशतं ददुः। तं च शुनःशेपं सोऽजीगर्तो निनियोज। धातोर्द्विर्भावं परित्यज्योपसर्गस्य द्विर्भावश्छान्दसः।

विमर्श—किसी भी वैदिक यज्ञ में चार पुरोहित आवश्यक हैं—होता, अध्वर्युं, ब्रह्मा और उद्गाता। होता का कर्म है, देवताओं का ऋग्वेद के मंत्रों से आवाहन करना। वह याज्या तथा अनुवाक्या ऋचाओं का पाठ करता है, पाठ का पारिभाषिक नाम है–शस्त्र (अप्रगीतमन्त्रसाध्या स्तुतिः शस्त्रम्)। अध्वर्यु यज्ञ के मुख्य कर्मों का संपादन करता है। इसी के उपयोग के लिए यजुर्वेद का संग्रह हुआ है। ब्रह्मा यज्ञ के बहिरंग से सबंध रखता है, पूरा निरीक्षण गलतियों

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

का परिमार्जन ब्राह्मविघ्नों से रक्षा आदि इसके कार्य हैं। उद्गाता का काम देवताओं की स्तुति में साम का गान करना है, इसके लिए आवश्यक ऋचाओं का संकलन सामवेद में हुआ है। इन पुरोहितों का वर्णन ऋग्वेद संहिता में (१०।७१।११) इस प्रकार है—

ऋचां त्वः पोषमास्ते पुपुष्वान् गायत्रं त्वो गायति शक्वरीषु।
ब्रह्मा त्वो वदति जातविद्यां यज्ञस्य मात्रां विमिमीत उ त्वः॥

अर्थात्—वह पोषक वृद्धि ऋचाओं की करता है,
शक्वरी-पदों में गान एक गाता है।
ब्रह्मा विभ्रम का समाधान बतलाता,
अध्वर्यु यज्ञ का पूरा काल कराता॥

इसकी विस्तृत व्याख्या के लिए सायण की ऋग्वेदभाष्यभूमिका का आरंभ देखें।

उपाकृत करना उस यज्ञ की एक विशेष विधि है जिसमें प्लक्ष वृक्ष की शाखा के साथ कुश लेकर आचमन कराया जाता है। इसके द्वारा कोई बलिपशु यज्ञार्ह बनता है। इसके बाद खूटे में उसे बाँधते हैं। पैर, कमर तथा सिर में रस्सी से बाँधने पर बलि होती है। बाँधने के लिए शुनःशेप का पिता ही तैयार हुआ। 'निनियोज' का प्रयोग बड़ा विचित्र है नि + √युज + लिट्— धातु का द्वित्व न होकर उपसर्ग का ही द्वित्व कर दिया गया है। शांख्यायन श्रौतसूत्र में (जहाँ शुनःशेपोपाख्यान इसी रूप में है) इसके स्थान पर 'नियुयोज' पाठ है। इसे छान्दस-प्रयोग ही कहना पड़ेगा।

अथ त्रिशसनप्रवृत्तिं दर्शयति—

तस्मा उपाकृताय नियुक्तायाऽऽप्रीताय पर्यग्निकृताय विशसितारं न विविदुः। स होवाचाजगर्तः सौयवसिः—'मह्यमपरं शतं दत्त, अहमेनं विशसिष्यामीति।' तस्मा अपरं शतं ददुः। सोऽसिं निःशान एयाय।

उसकी स्वीकृति (उपाकरण) तथा नियोजन हो जाने पर आप्री नामक छन्दों के द्वारा पूजा हो जाने पर, एवं अग्नि की प्रदक्षिणा समाप्त होने पर

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

[पुरोहितों को शुनःशेप का] वध करने वाला नहीं मिला [तब] उस सौयवसि अजीगर्त ने ही कहा—'मुझे और एक सौ (गायें) दीजिए तो मैं इसकी कर दूँगा।' उसे और एक सौ (गायें) दी गईं। वह तलवार की धार तेज करता हुआ आया।

सा०—उपाकरणनियोजने पूर्वमुक्ते। आप्रीसंज्ञिताभिरेकादशभिः प्रयाजयाज्याभिर्यद्यजनं तदाप्रीणनम्। दर्भरूपेणोल्मुकेन त्रिःप्रदक्षिणीकरणं तत् पर्यग्निकरणम्। तथाविधसंस्कारचतुष्टययुक्ताय तस्मै तस्य शुनःशेपस्य विशसितारं हिंसितारं पुरुषं क्रूरात्मानं कंचिदपि पुरुषं न लेभिरे। ततोऽजीगर्तः पूर्ववदपरं गोशतं गृहीत्वा मारयितुमसिं खड्गं निःशानो निशितं तीक्ष्णं कुर्वन्नेवेयाय जगाम।

विमर्श—शुनःशेप के वध के पूर्व चार बिधियाँ संपन्न की गईं—उपाकरण (यज्ञभूमि में स्वीकार करना), नियोजन (सिर, कमर और पैर में रस्सी बाँधकर उसे खूँटे से लगा देना), आप्रीणन (आप्रीनामक ११ प्रयाज-याज्या मंत्रों द्वारा यजन) तथा पर्यग्निकरण (पशु के चारों ओर ३ बार अग्नि को फेरना)। हिंसा के लिए कोई प्रस्तुत नहीं हुआ, हुआ तो वही अजीगर्त जो भूख से पीड़ित था, एक बार धन अर्जन करने का इच्छुक था। निःशानः = तेज धार करते हुए पजाते हुए (whetting)। निः+श्यै+क्त = निःश्यानः। वेद की भाषा की विचित्रता से ही 'निःशान' बना है।

पितुरजीगर्तस्य (शुनःशेपस्य ?) वृत्तान्तं दर्शयति—

अथ ह शुनःशेप ईक्षांचक्रे—'अमानुषमिव वै मा विशसिष्यन्ति। हन्ताहं देवता उपधावामीति'। स प्रजापतिमेव प्रथमं देवतानामुपससार—'कस्य नूनं कतमस्यामृतानाम्' इत्येतयर्चा।

इसके बाद शुनःशेप ने विचार किया, 'ये लोग मुझे अ-मानव (पशु) की तरह मार डालेंगे। अच्छा, मैं देवताओं की प्रार्थना करता हूँ।' देवताओं में सबसे पहले वह प्रजापति की ही प्रार्थना करने लगा—'अभी किसका, अमर

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

जीवों में किसका ?' (१ । २४ । १) इस ऋचा के द्वारा [प्रार्थना करने लगा] ।

सा०—अथ पितुः पुत्रमारणोद्योगानन्तरं शुनःशेपः पुत्रो मनस्येवमीक्षांचक्रे=विचारितवात् । अन्यत्र पर्यग्निकृतं पुरुषमारण्यांश्चोत्सृजन्ति । अहिंसाया इति श्रुतेः । पर्यग्निकरणादूर्ध्वं मनुष्यं परित्यजन्ति । एते तु माममानुषमिव मनुष्यव्यतिरिक्तमजादिपशुमिव विशसिष्यन्ति=मारयिष्यन्ति । हन्त हा कष्टमेतत्संपन्नम् । अहमितः परं रक्षार्थं देवता उपधावामि भजामीति विचार्य देवानां मध्ये प्रथमं मुख्यं प्रजापतिमेव कस्य नूनमित्यृचा उपससार=सेवितवान् ।

तस्य प्रजापतेः सहकारित्वेनाग्नेः सेवां दर्शयति—

तं प्रजापतिरुवाच—अग्निर्वै देवानां नेदिष्ठस्तमेवोपधावेति ।' सोऽग्निमुपससार—अग्नेर्वयं प्रथमस्यामृतानामित्येतयर्चा ।

उससे प्रजापति बोले—'देवताओं के सबसे निकट अग्नि ही हैं, उन्हीं की प्रार्थना करो ।' वह इस ऋचा से अग्नि की प्रार्थना करने लगा—'हमलोग अमरों में प्रथम अग्नि-देव का········(ऋ० १।२४।२) ।

सा०—तं सेवकं शुनःशेपं प्रजापतिरेवमुक्तवान् । अग्निः सर्वेषां देवानां नेदिष्ठो हविर्वहनेनातिसमीपवर्ती । अतस्तमेवोपास्स्वेत्युक्तः शुनःशेपोऽग्नेर्वयमित्यृचाऽग्निमुपासितवान् ।

तस्य चाग्नेः सहकारित्वेन सवितुरुपासनं दर्शयति—

तमग्निरुवाच—'सविता वै प्रसवानामीशे, तमेवोपधावेति ।' स सवितारमुपससार—'अभि त्वा देव सवितः' इत्येतेन तृचेन ।

उससे अग्नि बोले—'सविता प्रेरणाओं के स्वामी हैं । उन्हीं की प्रार्थना करो ।' उसने उन तीन ऋचाओं से सविता की प्रार्थना की—'हे देव सविता, तुम्हें·······' (ऋ० १।२४।३–५) ।

सा०—प्रसवानां सर्वेषु कार्येषु प्रेरणारूपाणामनुज्ञानात्सवितेशः स्वामी भवति । तस्मात्तमेवोपधावेति अग्निनोपदिष्टोऽभित्वेति तृचेन सवितारमुपासितवान् ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तस्य च सवितुः सहकारित्वेन वरुणस्योपासनं दर्शयति—

तं सवितोवाच—'वरुणाय व राज्ञे नियुक्तोऽसि, तमेवोपधावेति।' स वरुणं राजानमुपससारात उत्तराभिरेकत्रिंशता।

उससे सविता बोले—'[तुम] राजा वरुण के लिए बाँधे गये हो, उन्हीं की प्रार्थना करो।' उसने बाद की इकतीस ऋचाओं (ऋग्वेद के १।२४ के ६ से लेकर १५ तक = १० तथा १।२५ पूरा = २१ ऋचाओं का संग्रह) से राजा वरुण की स्तुति की।

सा०—हे शुनःशेप, वरुणार्थं त्वं यूपे बद्धोऽस्यतो वरुणमुपास्स्वेति सवित्रोक्तः पूर्वस्मात्सवितृविषयात्तृचादुत्तराभिरेकत्रिंशत्संख्याकाभिर्ऋग्भिर्वरुणमुपासितवान्। 'न हि ते क्षत्रम्' (ऋ० सं० १।२४।६) इत्याद्याः सूक्तशेषभूता दशर्चो, 'यच्चिद्धि ते विशः' (१।२५।१) इत्यादिकमेकविंशत्यृचं सूक्तमित्येवमेकत्रिंशत्संख्या द्रष्टव्या।

तस्य च वरुणस्य सहकारित्वेन पुनरप्यग्नेरुपासनं दर्शयति—

तं वरुण उवाच—'अग्निर्वै देवानां मुखं सुहृदयतमः, तं नु स्तुह्यथ त्वोत्स्रक्ष्याम इति।' सोऽग्निं तुष्टावात उत्तराभिर्द्वाविंशत्या।

उससे वरुण बोले—'अग्नि ही देवताओं के मुख हैं तथा सबसे अधिक दयालु हैं, उन्हीं की स्तुति करो तो हम तुम्हें छोड़ देंगे।' उसने इसके बाद की बाईस ऋचाओं (ऋ० १।२६ पूरा = १० ऋचाएँ तथा १।२७ की १ से १२ तक = १२ ऋचाएँ) के द्वारा अग्नि की स्तुति की।

सा०—अयमग्निः सर्वेषां देवानां मुखं मुखस्थानीयः। अग्निद्वारेणैव सर्वैर्देवैर्हविःस्वीकारात्। अत एव प्रीत्या हविर्वहनादतिशयेन सुहृदयः। सुहृदयतमं तमग्निं नु-क्षिप्रं स्तुहीति वरुणेनोक्तः पूर्वोक्ताभ्य ऋग्भ्य उत्तराभिर्द्वाविंशतिसंख्याकाभिर्ऋग्भिरग्निं तुष्टाव। 'वसिष्वाही'त्यादिकं (१।२६।१—१०) दशर्चं सूक्तम्। 'अश्वं नत्वा' (१।२७।१-१३) इत्यादिकं त्रयोदशर्चं सूक्तम्। तत्रान्त्यां परित्यज्य वसिष्वसूक्तद्वयगता ऋचो द्वाविंशतिसंख्याकाः।

अग्नेः सहकारित्वेन विश्वेषां देवानामुपासनं दर्शयति—

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तमग्निरुवाच—'विश्वान्नु देवान्स्तुह्यथ त्वोत्स्रक्ष्याम' इति। स विश्वान्देवांस्तुष्टाव 'नमो महद्भ्यो नमो अर्भकेभ्य' इत्येतयर्चा।

उससे अग्नि बोले—'विश्वे-देवों की स्तुति करो तो मैं तुम्हें छोड़ दूँ।' उसने विश्वेदेवों की स्तुति इस ऋचा से की—'बड़े लोगों को प्रणाम, छोटे लोगों को प्रणाम' (ऋ० सं० १।२७।१३)।

सा०—यद्यपि वरुणपाशेन बद्धत्वाद्वरुण एव शुनःशेपमुत्स्रष्टुं समर्थस्तथापि अग्न्यादीनां सहकारित्ववचनं दार्ढ्यार्थं द्रष्टव्यम्। विश्वेदेवा गणरूपा न भवन्ति, किन्तु सर्वे देवाः। तान्नमो महद्भ्य इत्येतया ऋचोपासितवान्।

तेषां च विश्वेषां देवानां सहकारित्वेनेन्द्रस्योपासनं दर्शयति—

तं विश्वे देवा ऊचुः—'इन्द्रो वै देवानामोजिष्ठो बलिष्ठः सहिष्ठः सत्तमः पारयिष्णुतमः, तं नु स्तुह्यथ त्वोत्स्रक्ष्याम' इति। स इन्द्रं तुष्टाव 'यच्चिद्धि सत्य सोमपा' इति चैतेन सूक्तेनोत्तरस्य च पञ्चदशभिः।

विश्वेदेव उससे बोले—'इन्द्र ही देवताओं में सबसे अधिक ओजस्वी, बलवान्, सहिष्णु, सत्यपर चलने वाले तथा प्रभावशाली हैं, उन्हीं की स्तुति करो तो तुम्हें छोड़ दें।' उसने इन्द्र की स्तुति—'हे सत्यचारिन् तथा सोमपायिन् 'जो कुछ भी' इस पूरे सूक्त (ऋ० १।२९=७ ऋचाओं) से तथा बाद की पंद्रह ऋचाओं १।३०।१—१५, इस प्रकार ७+१५=२२ ऋचाओं) से की

सा०—ओजोबलादिशब्दाः पूर्वाचार्यैरेवं व्याख्याताः—

ओजो दीप्तिर्बलं दार्ढ्यं प्रसह्यकरणं सहः।
सुजनः सम्पारयिष्णुरुपक्रान्तसमाप्तिकृत्॥ इति।

इष्ठप्रत्ययतमप्प्रत्ययाभ्यां तत्र तत्रातिशय उच्यते। तादृशमिन्द्रं 'यच्चिद्धि सत्य सोमपा' इत्यनेन सप्तर्चेन सूक्तेनोत्तरस्मिन्नपि 'आव इन्द्रम्' इत्यादिके द्वाविंशत्यृचे सूक्ते पञ्चदशभिरृग्भिश्च तुष्टाव। पूर्वमप्यनुग्रहेण चरैवेत्येवमिन्द्रो रोहितं प्रत्युपदिदेश।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

विमर्श—सायण किसी प्राचीन टीकाकार के श्लोक का उद्धरण दे रहे हैं जिससे इन्द्र के विषय में प्रयुक्त विशेषणों का अर्थ प्रकट होता है. तदनुसार, ओजः=चमक, दीप्ति। बल=निपुणता ? सह=हठपूर्वक कार्यसंपादन। सन्=सज्जन। पारयिष्णुः=आरम्भ किये हुए कार्य को समाप्त करने वाला। बाद की पंद्रह ऋचाएँ='आव इन्द्रम्' से आरम्भ होने वाले सूक्त (ऋ० १।३०) में २२ मंत्र हैं उनमें से प्रथम पंद्रह ऋचाएँ।

तस्योपदेशस्य फलपर्यवसायित्वमनुस्मरतस्तस्येन्द्रस्य शुनःशेपस्तुतौ प्रीत्यतिशयं दर्शयति—

तस्मा इन्द्रः स्तूयमानः प्रीतो मनसा हिरण्यरथं ददौ तमेतया प्रतीयाय 'शश्वदिन्द्र' इति।

स्तुति होने पर [मन से—(कीथ) ?] प्रसन्न होकर इन्द्र ने उसे मानसिक रूप से (अध्यात्म-दृष्टि से) स्वर्ण का बना रथ दिया। उसने 'हे इन्द्र! सदैव....' (ऋ० १।३०।१६) इस ऋचा से उसे (रथ को) अनुभूत किया (मानसिक रूप से ग्रहण किया)।

सा०—शुनःशेपेनेन्द्रः स्तूयमानः प्रीतो भूत्वा तस्मै शुनःशेपाय सुवर्णमयं दिव्यं रथमारोहणार्थं स्वकीयेन मनसैव ददौ। शुनःशेपोऽपि तदीयमनुग्रहमवगत्य पूर्वोक्ताभ्यः पञ्चदशभ्य उत्तरया 'शश्वदिन्द्र'इत्येतयर्चा तं रथं प्रतीयाय मनसैव प्रतिजगाम।

इन्द्रस्य सहकारित्वेनाश्विनोरुपासनं दर्शयति—

तमिन्द्र उवाच—'अश्विनौ नु स्तुह्यथ त्वोत्स्रक्ष्याम' इति। सोऽश्विनौ तुष्टाव उत्तरेण तृचेन।

उससे इन्द्र बोले—'अश्विन्-युगल की स्तुति करो तो तुम्हें छोड़ देंगे।' उसने इसके बाद की तीन ऋचाओं से (ऋ १।३०। १७–१९) अश्विन्-युगल की स्तुति की।

सा०—पूर्वोक्तायाः 'शश्वदिन्द्र' इत्यस्या उत्तरेण 'अश्विनावश्वावत्या' (१।३०।१७) इति तृचेनाश्विनौ स्तुतवान्।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अश्विनोः सहकारित्वेनोषसः उपास्ति दर्शयति—

तमश्विना ऊचतुः—'उषसं नु स्तुह्यथ त्वोत्स्रक्ष्याम इति ।' य उषसं तुष्टावात उत्तरेण तृचेन ।

उससे अश्विन्-युगल बोले—'उषा की स्तुति करो तो तुम्हें हम छोड़ देंगे।' उसके बाद की तीन ऋचाओं से (ऋ० १।३०।२०-२२) उषा की स्तुति की।

सा०—'कस्त उषः' (१।३०।२०) इत्यादिक उत्तरस्तृचः ।

अथोक्तानां सर्वासां देवतानामनुग्रहेण शुनःशेपस्य बन्धमोक्ष हरिश्चन्द्रस्यारोग्यं च दर्शयति—

तस्य ह स्मर्च्यृच्युक्तायां (स्म ऋचि ऋचि उक्तायां) वि पाशो मुमुचे, कनीय ऐक्ष्वाकस्योदरं भवत्युत्तमस्यामेव ऋच्युक्तायां वि पाशो मुमुचेऽगद ऐक्ष्वाक आस ॥१६॥

उसके द्वारा एक-एक ऋचा का उच्चारण होते-होते बंधन छूटता जा रहा था तथा ऐक्ष्वाक (हरिश्चन्द्र) का उदर भी छोटा हो रहा था। अन्तिम ऋचा के बोलते ही बंधन [बिल्कुल] खुल गया तथा ऐक्ष्वाक पूरा नीरोग हो गया।

सा०—तस्य पूर्वोक्तस्य तृचस्य संबन्धिन्यामृचि ऋचि एकैकस्यामृच्युक्तायां क्रमेण शुनःशेपस्य पाशो विमुमुचे=विशेषेण मुक्तोऽभूत्। ऐक्ष्वाकस्य हरिश्चन्द्रस्य यन्महोदरं तदपि क्रमेण कनीयोऽत्यल्पं भवति। उत्तमस्यामृच्युक्तायां पाशो विमुमुच एव सर्वात्मना मुक्तोऽभूत्। ऐक्ष्वाकोऽप्यगदो विशेषेण रोगरहित आस।

विमर्श—शुनःशेप के द्वारा इतनी ऋचायें पढ़ी गईं—ऋ० प्रथम मण्डल का २४ वां सूक्त ऋक्संख्या=१५; २५ वां सूक्त, ऋक्संख्या=२१; २६ वां सूक्त ऋक्संख्या=१०; २७ वां सूक्त, ऋक्संख्या=१३; २६ वां सूक्त, ऋक्संख्या=७; ३० वां सूक्त, ऋक्संख्या=२२; कुल ऋक्संख्या = १५+२१+१०+१३+७+२२ = ८८

इति श्रीमत्सायणाचार्यविरचिते माधवीये वेदार्थप्रकाशे ऐतरेयब्राह्मणभाष्ये त्रयस्त्रिंशाध्याये चतुर्थः खण्डः ॥४॥ (१६) [१३६]।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

बन्धनान्मुक्तस्य शुनःशेपस्योत्तरकालीनं वृत्तान्तं दर्शयति—

तमृत्विज ऊचुः—'त्वमेव नोऽस्याह्नः संस्थामधिगच्छे'ति। अथ हैतं शुनःशेपोऽञ्जःसवं ददर्श। तमेताभिश्चतसृभिरभिसुषाव— 'यच्चिद्धि त्वं गृहे गृहे' इति। अथैनं द्रोणकलशमभ्यवनिनाय— 'उच्छिष्टं चम्वोर्भर' इत्येतया ऋचा। अथ हास्मिन्नन्वारब्धे पूर्वाभिश्चतसृभिः स स्वाहाकाराभिः जुहवांचकार। अथैनमवभृथमभ्यवनिनाय—'त्वं नो अग्ने वरुणस्य विद्वान्' इत्येताभ्याम्। अथैनमत ऊर्ध्वमग्निमाहवनीयमुपस्थापयांचकार—'शुनश्चिच्छेपं निदितं सहस्रात्' इति।

उससे ऋत्विजों (पुरोहितों) ने कहा—'आज के हमारे कार्य का संपादन आप ही करें।' इसके बाद शनःशेप ने सीधी तरह से सोम-सवन की विधि खोज ली। इन चार ऋचाओं से उसका सवन किया (चुनाया)— 'जो तुम घर-घर में…' (ऋ १।२८।५-८)। फिर उसे द्रोण (लकड़ी के) कलश में इस ऋचा से ले गया—'दोनों कटोरों में बचे हुए अंश को ले लो' (१।२८।६)। तब, [हरिश्चंद्र के द्वारा शुनःशेप का] स्पर्श हो जाने पर, उसने [इसी सूक्त की] पहली चार ऋचाओं (१।२८।१-४) में स्वाहा शब्द लगाकर हवन किया। तब उसे अवभृथ- (स्नान या याग, अन्तिम स्नान) की ओर इन दो ऋचाओं से ले गया—'हे अग्ने, तुम वरुण को जानते हो' (ऋ ४।१।४। तथा ५)। इसके बाद उसने आहवनीय-अग्नि की उपस्थापना (हरिश्चन्द्र के यहां रखना) इस मंत्र से की—'शुनःशेप हजार से बँधा हुआ ....' (ऋ०५।२।७)।

सा०—देवतानुग्रहयुक्तं तं शुनःशेपं विश्वामित्रादयः सर्वं ऋत्विज एवमूचुः, हे शुनःशेप ! त्वमेव नोऽस्माकमस्याह्नोऽभिषेचनीयाख्यस्य संस्थां समाप्तिमधिगच्छ = प्राप्नुहि। अनुष्ठापयेत्यर्थः। तैरेवमुक्ते सत्यनन्तरं शुनःशेप एतमभिषेचनीयाख्यं सोमयागमञ्जःसवं ददर्श। अञ्जसर्जुमार्गेण सवः सोमाभिषवो यस्मिन्यागे सोऽञ्जःसवस्तादृशं प्रयोगकारं निश्चितवान्। निश्चित्य च तं सोमं

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri Funding: MIDF

यच्चिद्धीत्यादिभिश्चतसृभिरॠग्भिरभिषुतं कृतवान्। अथैनमभिषुतं सोममेतयोच्छिष्टं चम्वोरित्यृचा द्रोणकलशमभिलक्ष्यावनिनाय द्रोणकलशे प्रक्षिप्तवान्। अथानन्तरमस्मिन्हरिश्चन्द्रेऽन्वारब्धे शुनःशेपदेहमुपस्पृष्टवति सत्युक्ताभ्य ऋग्भ्यः पूर्वाभिर्यत्र ग्रावेत्यादिभिश्चतसृभिरॠग्भिः स्वाहाकारसहिताभिः सोमं जुहवांचकार। यत्र ग्रावेत्यादिकं सूक्तं नवर्चं तत्र यच्चिद्धीति पञ्चमी तामारभ्य चतसृभिरॠग्भिरभिषवः। उच्छिष्टमित्यादिका नवमी तया द्रोणकलशे प्रक्षेपः। यत्र ग्रावेत्यादिभिश्चतसृभिर्होम इत्येवं कृत्स्नस्य सूक्तस्य विनियोगः। अथ होमानन्तरमेव कर्तव्यमवभृथमभिलक्ष्यावनिनाय सर्वमवभृथसाधनं तद्देशे नीत्वा त्वं नो अग्न इत्यादिकाभ्यामृग्भ्यामवभृथयागं कृतवान्। अथ तथा कृत्वा तत ऊर्ध्वमेनमाहवनीयमग्निं शुनश्चिदित्यादिनोपस्थापयांचकार हरिश्चन्द्रमुपस्थाने प्रेरयामास। सोऽयमञ्जःसवः। इष्टिपशुसांकर्यमन्तरेणाञ्जसऋजुमार्गेणानुष्ठितत्वात्।

विमर्श—इस पूरे सन्दर्भ में एक दिन के सोमयाग-संपादन की विधियाँ प्रदर्शित की गई हैं। शुनःशेप उस दिन के कृत्य का संपादक बना क्योंकि वरुण के पाश से बच जाना कोई साधारण बात नहीं थी। अपनी स्तुतिशक्ति से वह पूरी तरह मुक्त हो गया था अतः उसकी प्रतिभा देखकर ही विश्वामित्रादि ऋत्विजों ने उसे यज्ञ-संपादन का भार दिया। शुनःशेप ने अपनी प्रतिभा का पहला परिचय यही दिया कि सोम पीसने का नई विधि का आविष्कार किया। 'ददर्श' का प्रयोग बतलाता है कि ऋषि हो गया। ऋषि की निरुक्ति यास्क ने √दृश् से ही दी है। √दृश् = देखना किन्तु वैदिक भाषा का √दृश् 'आविष्कार करना' के अर्थ में था तभी तो ऋषि-गण मंत्रों के द्रष्टा थे। द्रष्टा=अपनी बुद्धि के बल से किसी नई बात को जनता के सामने रखने वाला, अनुभवों को शब्दों में उतारने वाला। अञ्जः=सीधा रास्ता, सव= सोम चुआना या पीसना।

याग की विधियाँ निम्नांकित थीं—(१) सोम को चुआना (२) उसे द्रोणकलश में रखना (३) हरिश्चन्द्र के द्वारा शुनःशेप का स्पर्श या अन्वारंभ हो जाने पर हवन करना (४) अवभृथ स्नान=अन्तिम स्नान करना (५) आहवनीय अग्नि को गार्हपत्य अग्नि में स्थापित करना। इस स्थान पर कुल

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

४+१+४+२+१=१२ ऋचाओं का प्रयोग हुआ। 'द्रोण' का सम्बन्ध द्रु (वृक्ष, दारु=लकड़ी (Greek—drus, Eng-Tree) से है। सोम को पीस कर कटोरों में रखते हैं तथा समूचा पिसा हुआ भाग द्रोण कलश में डाल देते हैं।

विश्वामित्राजीगर्तयोः कंचित्संवादं दर्शयति—

अथ ह शुनःशेपो विश्वामित्रस्याङ्कमाससाद। स होवाचाजीगर्त्तः सौयवसिः—'ऋषे, पुनर्मे पुत्रं देही'ति। 'नेति' होवाच विश्वामित्रो, 'देवा वा इमं मह्यमरासते'ति। स ह देवरातो वैश्वामित्र आस। तस्यैते कापिलेयबाभ्रवाः।

इसके बाद शुनःशेप विश्वामित्र की गोद में बैठ गया। तब सूयवस का पुत्र अजीगर्त बोला—'हे ऋषे, मेरा पुत्र मुझे लौटा दो।' विश्वामित्र ने उत्तर दिया, 'नहीं, उसे मुझे देवताओं ने दिया है (अरासत—√रा = देना + लुङ् व्यत्यय से आत्मनेपद)।' [इसके बाद से ही] वह विश्वामित्र का पुत्र तथा देव-रात (देवताओं का दिया हुआ) हो गया। उसी के [पुत्र ये] कापिलेय (कपिल के वंशधर) तथा बाभ्रव (बभ्रु के वंशधर) हुए।

सा०—अथाभिषेचनीयसमाप्तेरनन्तरं हरिश्चन्द्रसहितेष्वृत्विक्षु विस्मितेषु स शुनःशेप इत ऊर्ध्वं कस्य पुत्रोऽस्त्विति विचारे सति, तदीयेच्छैव नियामिकेति महर्षीणां वचनं श्रुत्वा शुनःशेपः स्वेच्छया विश्वामित्रपुत्रत्वमङ्गीकृत्य सहसा तदीयमङ्कमाससाद। पुत्रो हि सर्वत्र पितुरङ्के निषीदति। तदानीं सूयवसपुत्रोऽजीगर्त्तो विश्वामित्रं प्रत्येवमुवाच—हे महर्षे, मदीयपुत्रमेनं पुनरपि मह्यं देहीति। स विश्वामित्रो नेति निराकृत्यैवमुवाच—प्रजापत्यादयो देवा एवेमं शुनःशेपं मह्यमरासत = दत्तवन्तः, तस्मात्तुभ्यं न दास्यामीति। स च शुनःशेपो देवैः दत्तत्वाद् देवरात इति नामधारी विश्वामित्रपुत्र एवास। तस्य च देवरातस्यैते कपिलगोत्रोत्पन्ना बभ्रुगोत्रोत्पन्नाश्च बन्धवोऽभवन्।

अथ शुनःशेपाजीगर्तयोः संवादं दर्शयति—

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

स होवाचाजीगर्तः सौयवसिः—'त्वं वेहि, विह्वयावहा' इति। स होवाच अजीगर्तः सौयवसिः—

'आङ्गिरसो जन्मनास्याजीगर्तिः श्रुतः कविः।
ऋषे पैतामहात्तन्तोर्मापगाः पुनरेहि माम् ॥१॥' इति।

स होवाच शुनःशेपः—

'अदर्शुस्त्वा शासहस्तं न यच्छूद्रेष्वलप्सत।
गवां त्रीणि शतानि त्वमवृणीथा मदङ्गिरः ॥२॥' इति।

अजीगर्त सौयवसि बोला—'तुम ही चले आओ (विश्वामित्र तो देगें नहीं), हम दोनों (माता-पिता) बुला रहे हैं।' अजीगर्त सौयवसि फिर बोला—'जन्म से तुम आंगिरस तथा अजीगर्त के पुत्र के रूप में विख्यात कवि (ऋषि) हो। हे ऋषे! पूर्वजों की पंक्ति से अलग मत जाओ, फिर मेरे पास लौट आओ ॥ १ ॥'

शुनःशेप ने कहा—'तुम्हें लोगों ने हाथ में तलवार लिये हुए देखा है जो बात शूद्रों में भी नहीं पायी गई है। हे आंगिरस (गोत्र पर गर्व करने वाले)! तुमने मेरे लिए तीन सौ गायें ग्रहण की हैं ॥२॥'

सा०—विश्वामित्रेण निराकृतः सोऽजीगर्तः शुनःशेपं प्रत्येवमुवाच। हे पुत्र त्वं वा त्वमेव विश्वामित्रादपगतः सन्निह्यस्मद्गृहे गच्छ। त्वदीयमाता चाहं चोभावावां विह्वयावहै = विशेषेण तवाऽऽह्वानं करवावहै। इत्युक्त्वा तूष्णीमवस्थितं तं शुनःशेपं प्रति पुनरपि कयाचिद् गाथयैवमुवाच। हे शुनःशेप त्वं जन्मनाऽऽङ्गिरसोऽङ्गिरोगोत्रोत्पन्न आजीगर्तिरजीगर्तस्य पुत्रः कविर्विद्वाञ्श्रुत इत्येवं सर्वत्र प्रसिद्धः। अतो हे महर्षे शुनःशेप, पैतामहात्पितामहेन प्रजापतिना संपादितात्तन्तोः संतानादङ्गिरोवंशान्माऽपगा = अपगतो मा भव। तस्मात्पुनरपि मामेहि मद्गृहे समागच्छेत्युक्तः शुनःशेपः स्वयमपि गाथया प्रत्युत्तरं ददौ। शासो विशसनहेतुः खड्गः। हेऽजीगर्त, मद्वधाय शासहस्तं खडगहस्तं त्वां सर्वेऽप्यदर्शुर्दृष्टवन्तः। यत्क्रूरं कर्म शूद्रेष्वत्यन्तनीचेष्वपि नालप्सत न लब्धवन्तो लौकिका जनास्तादृशं क्रौर्यं त्वया कृतम्। हेऽङ्गिरः! आङ्गिरस-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

गोत्रोत्पन्नाजीगर्त, मन्मां निमित्तीकृत्य त्वं गवां शतानि त्रीण्यवृणीथा वृतवानसि। तदिदमत्यन्तकष्टमित्युक्तवान्।

विमर्श—पिता-पुत्र का यह संवाद दर्शनीय है। पुत्र ने किस रूप में पिता का तिरस्कार किया है, यह हम जानते हैं। गोत्र पर गर्व करनेवाले पिता को पुत्र 'आंगिरः' कह कर व्यंग्य कर रहा है। शास = √ शस् 'काटना' से = तलवार। 'मत्+अङ्गिरः' में मत् का पंचम्यन्त प्रयोग चतुर्थी के अर्थ में (मेरे लिए) हुआ है यह सुप् व्यत्यय का उदाहरण है। देखें-वैदिकी प्रक्रिया, पृ० ३२-३३। 'न यच्छूद्रेष्वलप्सत' का प्रयोग बतलाता है कि पुत्र की हत्या या नरमेध बहुत ही निकृष्ट था, शूद्र या नीच लोग भी इससे घृणा करते थे।

पुनरप्यजीगर्तशुनःशेपयोरुक्तिप्रत्युक्ती दर्शयति—

स होवाचाजीगर्तः सौयवसिः—

'तद्वै मा तात तपति पापं कर्म मया कृतम्।
तदहं निह्नुवे तुभ्यं प्रतियन्तु शता गवाम् ॥३॥' इति।

स होवाच शुनःशेपः—

'यः सकृत्पापकं कुर्यात्कुर्यादेनत्ततोऽपरम्।
नापागाः शौद्रान्न्यायादसंधेयं त्वया कृतम् ॥४॥ इति'।

अजीगर्त सौयवसि बोला—'हे पुत्र! मुझे अभी उससे पश्चात्ताप हो रहा है जो पाप का काम मैंने किया है (तीन सौ गायें लेना)। मैं उसका परिहार करता हूँ। वे [तीन] सौ गायें तुम्हारे लिए मिल जायँ॥ ३॥' शुनःशेप बोला—'जो व्यक्ति एक बार पाप-कर्म करता है, उसे वह दूसरी बार भी कर सकता है। [इस तरह परिहार या प्रायश्चित्त करने से] शूद्रवत् आचरण से तुम बच नहीं सकते, तुमने ऐसा किया है जिसका कोई परिहार नहीं है।

सा०—शुनःशेपेनोपालब्धोऽजीगर्तः स्वकीयमनुतापं दर्शयितुं कांचिद् गाथामेवमुवाच—हे तात, पितृवदुपलालनीय शुनःशेप, मया यत्पापं कृतं तद्वै मा तपति = तदेव मां मनसि संतप्तं करोति। अहं तत्पापं निह्नुवे = परिहरामि। गवां शतानि पूर्वं मया गृहीतानि त्रीणि यानि, तानि तुभ्यं त्वदर्थं प्रतियन्तु =

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रत्येकमेव प्राप्नुवन्तु । इतरयोः पुत्रयोर्गावो मा भूवँस्तवैव सर्वाः सन्त्विति । ततः स शुनःशेपो गाथया प्रत्युत्तरं ददौ । यः पुमान्धर्मशास्त्रभीतिरहितः सकृत्पापकं कुर्यात्स पुमांस्ततः पापादन्यदेनत्पापं तदभ्यासवशात्कुर्यादेव । त्वं तु शौद्रान्न्याया-नीचजातिसंबन्धिनः क्रूरादाचरणान्नापागाः = अपगतो न भवसि । असंधेयं = प्रतिसंधानरहितं पापं त्वया कृतमित्येषा शुनःशेपस्य प्रत्युक्तिः ।

अथ विश्वामित्रकृत्यं दर्शयति—

'असंधेयमिति' ह विश्वामित्र उपपपाद । स होवाच विश्वामित्रः—

'भीम एव सौयवसिः शासेन विशिशासिषुः ।
अस्थान्मैतस्य पुत्रो भूर्ममैवोपेहि पुत्रताम् ॥५॥' इति ।

'परिहाररहित' [शब्द सुनते ही उसकी] उपपत्ति (सिद्धि Proof) विश्वामित्र ने की—'सौयवसि जब तलवार से काटने की इच्छा करते हुए खड़ा था (अस्थात्) तो बड़ा भयंकर लग रहा था । इसका पुत्र मत बनो, मेरे पुत्र के रूप में ही आओ ॥ ५ ॥'

सा०—असंधेयमप्रतिसमाधेयं पापमिति शुनःशेपेन यदीरितं तदेतदप्रति-समाधेयत्वं विश्वामित्र उपपपाद = युक्तिभिरुपपादितवान् । तदुपपादनार्थमेव विश्वामित्र इमां गाथामुवाच—सूयवसस्य पुत्रोऽजीगर्तो भीम एव भयहेतुरेव सञ्शासेन हस्तगतखड्गेन स विशिशासिषुरस्थात् = विशसनकर्तुमिच्छुरवस्थित-वान् । अतो हे शुनःशेप ! एतस्य पापिष्ठस्य पुत्रो मा भूः किन्तु ममैव पुत्र-तामुपेहि ।

अथ शुनःशेपविश्वामित्रयोरुक्तिप्रत्युक्ती दर्शयति—

स होवाच शुनःशेपः—

'स वै यथा नो ज्ञपया राजपुत्र तथा वद ।
यथैवाङ्गिरसः सन्नुपेयां तव पुत्रताम् ॥६॥' इति ।

स होवाच विश्वामित्रः—

'ज्येष्ठो मे त्वं पुत्राणां स्यास्तव श्रेष्ठा प्रजा स्यात् ।
उपेया दैवं मे दायं तेन वै त्वोपमन्त्रय ॥७॥' इति ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

शुनःशेप ने कहा—'हे राजपुत्र, जैसा कि आपने अभी हमें सूचना दी है, तो बतावें जिससे मैं अंगिरस गोत्र में उत्पन्न होकर भी आपका पुत्र बन जाऊँ ॥६॥' विश्वामित्र ने उत्तर दिया—'तुम मेरे पुत्रों में सबसे बड़े रहोगे, तुम्हारी संतान सबसे ऊँची रहेगी। तुम मेरी दैविक (Divine) संपत्ति प्राप्त कर लो (पुत्रत्व प्राप्त कर लो)—इसी से मैं तुम्हें बुला रहा हूँ ॥ ७ ॥'

सा०—विश्वामित्रेणैवं बोधितः शुनःशेपः पुनरपि गाथया विश्वामित्रं प्रत्येवमुवाच—अयं विश्वामित्रो जन्मना क्षत्रियः सन्स्वकीयेन तपोमहिम्ना ब्राह्मण्यं प्राप्तवान्, इत्येवं तद्वृत्तान्तं सूचयितुं हे राजपुत्रेति संबोधितवान्। स वै तथाविधो राजजातीय एव सन् यथा येन प्रकारेण नोऽस्माभिः सर्वैरा=समन्ता-ज्ज्ञपय ब्राह्मणत्वेन ज्ञायसे, तथैवास्मद्विषयेऽपि त्वं वद। कथं वदितव्यमिति तदुच्यते। अहमिदानीमङ्गिरोगोत्रः संस्तत्परित्यागेन तव पुत्रत्वं येनैव प्रकारेणोपेयां तथैवानुगृहाणेति शेषः। एतद्वाक्याभिप्रायः पूर्वैः संक्षिप्य दर्शितः—

पुरात्मानं नृपं विप्र (प्रं) तपसा कृतवानसि।
एवमाङ्गिरसं मा त्वं वैश्वामित्रमृषे कुरु ॥ इति।

ततो विश्वामित्रो गाथया प्रत्युत्तरमुक्तवान्। हे शुनःशेप, त्वं मे पुत्राणां मध्ये ज्येष्ठः स्याः=ज्येष्ठो भव। तव पुत्रादिरूपा प्रजापीतरस्याः श्रेष्ठा स्यात्। मे मह्यं विश्वामित्राय, दैवंदेवैः प्रसन्नैर्दत्तं दायं पुत्रत्वरूपं लाभमुपेयाः प्राप्नुहि। तेन वै=तेनैव प्रकारेण त्वोपमन्त्रये त्वां पुत्रत्वेन व्यवहरामि।

विमर्श—'ज्ञपया' का अर्थ सायण ने 'ज्ञायसे' किया है—'हे राजपुत्र, [राजवंश में होने पर भी] आप [ब्राह्मण के रूप में] जाने जाते हैं उसी प्रकार हमारे विषय में भी परिवार-परिवर्तन की बात बतावें।' किन्तु यहां कई शब्दों का अध्याहार करना पड़ता है। यह ठीक नहीं है। यहाँ पर शब्द है 'अज्ञपयः' जो अट् से विहीन है। अर्थ—तुमने बतलाया है। ज्ञपयः+राज-पुत्र=ज्ञपया राजपुत्र (छान्दस दीर्घ)। कीथ ने'ऽज्ञपयो राजपुत्र' का सुझाव दिया है तथा शां० श्रौ० सू० में 'ज्ञपय' पाठ है। ज्ञपया या ज्ञपय को लोट् लकार में भी ले सकते हैं—हे राजपुत्र, बतलाओ। सायण किसी प्राचीन टीकाकार का उद्धरण यहां भी देते हैं। प्रतीत होता है कि किसी ने श्लोक-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri Funding: MIDF

वार्तिक की तरह की कोई चीज ऐतरेयब्राह्मण पर लिखी थी जो सायण के समय उपलब्ध थी। 'दैवं दायम्' का अर्थ सायण करते हैं—देवताओं द्वारा दी गई पुत्रस्वरूपी संपत्ति।

पुनरपि शुनःशेपविश्वामित्रयोर्वृत्तान्तं दर्शयति—

स होवाच शुनःशेपः—

'संज्ञानानेषु वै ब्रूयात्सौहार्द्याय मे श्रियै।
यथाहं भरतऋषभोपेयां तव पुत्रताम् ॥८॥' इति।

अथ ह विश्वामित्रः पुत्रानामन्त्रयामास—

'मधुच्छन्दाः शृणोतन ऋषभो रेणुरष्टकः।
ये के च भ्रातरः स्थ नास्मै ज्यैष्ठ्याय कल्पध्वम् ॥९॥' इति।

शुनःशेप ने कहा—'[आपके पुत्र] एकमति से, मेरे साथ मित्रभाव और धन के [वितरण के] लिए स्वीकृति प्रदान करें जिससे, हे भरतवंश के श्रेष्ठ ! मैं आपका पुत्र बन जाऊँ ॥८॥' तब विश्वामित्र ने अपने पुत्रों को संबोधित किया—'मधुच्छन्दा, सुनो, ऋषभ, रेणु, अष्टक और जितने भी उनके भाई हैं, वे सब इसे ज्येष्ठ के रूप में देखें ॥ ९ ॥'

सा०—विश्वामित्रेण प्रलोभितः शुनःशेपः स्वकार्यदार्ढ्यार्थं गाथयैवमुवाच। संज्ञानानेषु=मद्विषयैकमत्यं प्राप्तेषु त्वदीयपुत्रेषु [स] वोऽपि मां ब्रूयात्, ज्येष्ठ-भ्रातृत्वेन व्यवहरतु। तच्च मे मम सौहार्द्याय भ्रातृभिरितरैः स्नेहातिशयाय श्रियै धनलाभाय च संपद्यते। हे भरतऋषभ, भरतवंशश्रेष्ठ, विश्वामित्र ! अहं तव पत्रतां यथोपेयां तथैवैतेषां पुत्राणामग्रेऽनुगृहाणेति शेषः। ततो विश्वामित्र इतरान् पुत्रान् आहूय गाथयैवमाज्ञापितवान्। यो मधुच्छन्दा नाम यश्चर्षभो योऽपि रेणुर्योऽपि अष्टक एते मुख्या हे पुत्रकाः शृणोतन मदीयामाज्ञां शृणुत। केचिद्यूयं सर्वे भ्रातरः स्थ ते सर्वेऽपि अस्मै शुनःशेपादस्मादपि ज्यैष्ठ्याय न कल्पध्वं=ज्येष्ठत्वाभिमानं मा कुरुत। किन्त्वसावेव युष्माकं मध्ये ज्येष्ठो भूत्वाऽवतिष्ठतामिति ॥

विमर्श—संज्ञान=एक प्रकार का मिला जुला ज्ञान, ऐकमत्य। जब सभी

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

भाई एकमति से प्रेम तथा धन दान करने को स्वीकृति देंगे तभी शुनःशेप विश्वामित्र का पुत्र हो सकेगा। विश्वामित्र के इतने लड़के थे कि वे सबों का नाम नहीं ले सके, कुछ मुख्य पुत्रों का नाम लेकर 'ये के च भ्रातरः स्थन' कह दिया। 'स्थन'=√अस्+लोट् मध्य० बहुवचन तङ् के स्थान में 'थन' आदेश—तप्तनप्तनथनाश्च' (७।१।४५) के अनुसार। इसी सूत्र से 'शृणोतन' (शृणुत) की सिद्धि होती है। श्रु+तनप्। देखिये—वैदिकी प्रक्रिया, पृ० ११३। सायण ने 'स्थन' को इस रूप में नहीं लिया जिससे संगति बैठाने में परेशान हो गये हैं। 'स्थ' और 'न' को अलग-अलग लिया है। 'न' को कल्पध्वम् के साथ बैठाने में अस्मै=अस्मान् मानना पड़ा तथा अर्थात् का प्रयोग करके अर्थ की खींचातानी करनी पड़ी। इसके बाद विश्वामित्र का अपने पुत्रों के साथ काफी संघर्ष होता है।

इति श्रीमत्सायणाचार्यविरचिते माधवीये वेदार्थप्रकाश ऐतरेय ब्राह्मणभाष्ये त्रयस्त्रिंशाध्याये पञ्चमः खण्डः ॥५॥ (१७) [१४०]।

अथ विश्वामित्रपुत्राणां वृत्तान्तमाह—

तस्य ह विश्वामित्रस्यैकशतं पुत्रा आसुः। पञ्चाशदेव ज्यायांसो मधुच्छन्दसः, पञ्चाशत्कनीयांसः।

उन विश्वामित्र के एक-सौ-एक पुत्र थे, मधुच्छन्दा से पचास बड़े थे, और पचास छोटे।

सा०—मधुच्छन्दोनामकः कश्चित्पुत्रो मध्यमस्ततोऽपि ज्येष्ठाः कनिष्ठाश्च प्रत्येकं पञ्चाशत्संख्याका इत्येवमेकशतं तस्य पुत्राः।

विमर्श—एकशतम्='शतम्' (एक सौ)+एकम् (एक)—एकम्=एकोत्तरम्। ऐसे प्रयोग वैदिक भाषा में बहुत से हैं। 'शतम्' शब्द को मूल मानकर भारत-यूरोपीय भाषाओं का वर्गीकरण केण्टुम् और सतम् वर्ग में किया जाता है। मूल भा० यू० भाषा में जो कंठ्य (तालव्य की सहायता से उच्चरित) वर्ग था वह केंटुम् वर्ग में क् ही रह गया जब कि सतम् में वह संघर्षी ऊष्म (स, श) हो गया। मू० भा० यू० कमतोम् KMtOm)।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सतम् वर्ग

(१) अवेस्ता—सतम् (satem)
(२) फारसी—सद
(३) संस्कृत—शतम्
(४) रूसी—स्तो (sto)
(५) हिन्दी—सौ
(६) बल्गेरियन—सुतो—(suto)
(७) लिथुआनियन—स्जिम्तास (szi-mtas)

केंटुम् वर्ग

(१) लैटिन—कंटुम् (centum)।
(२) ग्रीक—हेकटोन् (hekaton)।
(३) इटैलियन—केण्टो (cento)।
(४) फ्रेंच—केन्त (cent)।
(५) केल्टिक—कैन्ट।
(६) गॉलिक—क्युड (kyud)।
(७) तोरवारी—कन्ध।
(८) गाथिक—खुंद (hund)।

मधुच्छन्दा विश्वामित्र का ५१ वाँ नम्बर का लड़का था। यही बीच की कड़ी (landmark) था जिससे विश्वामित्र अपने लड़कों का नंबर जानते थे। मधुच्छन्दा से बड़े ५० और उससे छोटे भी ५०।

तेषां मध्ये ज्येष्ठानां वृत्तान्तमाह—

तद्ये ज्यायांसो, न ते कुशलं मेनिरे।ताननु व्याजहार—'अन्तान्वः प्रजा भक्षीष्टे'ति। त एतेऽन्ध्राः पुण्ड्राः शबराः पुलिन्दा मूतिबा इत्युदन्त्या बहवः। वैश्वामित्रा दस्यूनां भूयिष्ठाः।

तब उनमें जो बड़े थे, उन्होंने इसे अच्छा नहीं समझा। उन्हें [इसलिए विश्वामित्र ने] शाप दिया—'तुम्हारी संतान [पृथ्वी के] सीमा-प्रदेशों का उपभोग करेगी।' वे ये हैं—अन्ध्र, पुण्ड्र, शबर, पुलिन्द और मूतिब जातिवाले, जो बहुत बड़ी संख्या में सीमा-प्रदेशों के पार (उद्+अन्त+यत्) रहा करते हैं। दस्यु-जातियों में अधिकांश विश्वामित्र की ही संतान हैं।

सा०—तत्तेष्वेकशतसंख्याकेषु पुत्रेषु मध्ये ये मधुच्छन्दसो ज्येष्ठाः पञ्चाशत्संख्याकाः सन्ति, ते शुनःशेपस्य विश्वामित्रपुत्रत्वं कुशलं न मेनिरे=इदं समीचीनमित्येवं नाङ्गीकृतवन्तः। ताञ्ज्येष्ठान् पञ्चाशत्संख्याकाननुलक्ष्य विश्वामित्रो

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

व्याजहार=व्याहरणं शापरूपं वाक्यमुक्तवान्—हे ज्येष्ठपुत्राः, युष्माकं मदीयाज्ञातिलङ्घिनां प्रजाः पुत्रादिका अन्तान्भक्षीष्ट=चण्डालादिरूपान्नीचजातिविशेषान्भजतामिति। त एते शप्ताः सन्तोऽन्ध्रत्वादिपञ्चविधनीचजातिविशेषा भवन्ति। इतिशब्दस्य तत्प्रदर्शनार्थत्वादन्येऽपि नीचजातिविशेषाः सर्वे विवक्षिताः। उद्गतोऽन्त उदन्तोऽत्यन्तनीचजातिस्तत्र भवा उदन्त्याः। ते बहवोऽनेकविधा वैश्वामित्राः=विश्वामित्रसंततिजाः, दस्यूनां तस्कराणां मध्ये भूयिष्ठाः अत्यधिकाः।

विमर्श—'अन्त' का अर्थ है सीमा-प्रदेश। जो तात्कालिक आर्य-प्रदेश। की सीमा थी उसी के पार रहने का आदेश विश्वामित्र ने अपने पुत्रों को दिया। अन्ध्र आदि जातियाँ अनार्य-कुल की हैं, दस्यु भी उसी जाति में हैं। इन सबों के वर्णन के लिए देखें--Vedic Index. अपने-अपने स्थानों पर। उदन्त्यः=उद्गतः (पार किया है) अन्तः (सीमा को) उदन्तः। 'तत्र भवः' के अर्थ में यत् प्रत्यय लगाकर उदन्त्यः। दस्यु का अर्थ तस्कर नहीं है एक जाति ही दस्यु है।

ज्येष्ठानां वृत्तान्तमुक्त्वा मधुच्छन्दसः तत्कनिष्ठानां च वृत्तान्तं गाथया दर्शयति—

स होवाच मधुच्छन्दाः पञ्चाशता सार्धम्—
'यन्नः पिता संजानीते तस्मिंस्तिष्ठामहे वयम्।
पुरस्त्वा सर्वे कुर्महे त्वामन्वञ्चो वयं स्मसि ॥१॥' इति।

अपने पचास [भाइयों] के साथ वह मधुच्छन्दा बोला—'हमारे पिता जिसे स्वीकार करते हैं, उसी बात को हम भी स्वीकृत कर रहे हैं। हम सब तुम्हें सामने रखते हैं और तुम्हारे पीछे हम सब हैं ॥१॥'

सा०—कनिष्ठपुत्राणां पञ्चाशता सह मधुच्छन्दोनामकः स मध्यमः पुत्रः शुनःशेपं प्रत्येवमुवाच—हे शुनःशेप ! नोऽस्माकं पिता विश्वामित्रो यत्कार्यं त्वदीयज्येष्ठपुत्रत्वरूपं संजानीते=सम्यग्जानाति, अङ्गीकरोति; तस्मिन्कार्ये वयं तिष्ठामहे=तत्कार्यमङ्गीकुर्मः। सर्वे वयं त्वा शुनःशेपनामानं त्वां पुरस्कुर्महे

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पुरस्कृत्य ज्येष्ठं कृत्वा वर्तामहे। त्वामन्वञ्चः शुनःशेपमनुगच्छन्तः स्मसि भवाम इत्युक्तवान्।

विमर्श—सम्+√ज्ञा=स्वीकार करना। तिष्ठामहे=√स्था का आत्मनेपद 'प्रकाशनस्थेयाख्ययोश्च' (पा० सू० १।३।२३) से हुआ है क्योंकि यहाँ पर स्थेय (विवाद का निर्णेता) की उक्ति (आख्या) है। मधुच्छन्दा अपने निर्णय की अभिव्यक्ति करता है कि पिता की बात में हम हैं। इसी से 'संशय्य कर्णादिषु तिष्ठते यः' होता है। अन्वक्=अनु+√अञ्च्+क्विन्=पीछे। 'स्मसि' स्मः। इदन्तो मसि (७।१।४५) से मस् में इक् का आगम। अन्य उदाहरण हैं—नमो भरन्त एमसि। देखिए वैदिकी प्रक्रिया पृ० ११४।

विश्वामित्रवृत्तान्तं दर्शयति—

अथ ह विश्वामित्रः प्रतीतः पुत्रांस्तुष्टाव।

अब विश्वामित्र विश्वास पाकर पुत्रों की प्रशंसा करने लगे।

सा०—अथ मधुच्छन्दः सहितानां पञ्चाशत्कनिष्ठपुत्राणां शुनःशेपविषयज्येष्ठपुत्रत्वाङ्गीकारानन्तरं स विश्वामित्रः प्रतीतस्तेषु प्रत्ययं मदनुकूला इति विश्वासं प्राप्तः प्रीत्या पुत्रान् गाथाभिस्तुष्टाव।

तत्र प्रथमां गाथामाह—

ते वै पुत्राः पशुमन्तो वीरवन्तो भविष्यथ।
ये मानं मेऽनुगृह्णन्तो वीरवन्तमकर्त मा ॥२॥

हे मेरे पुत्रो, तुम लोग पशु तथा वीर संतानों से युक्त रहोगे। तुम लोगों ने मेरी इच्छा को स्वीकार करते हुए, आज मुझे वीर-पुत्रयुक्त कर दिया है ॥२॥

सा०—हे मधुच्छन्दःप्रमुखाः कनिष्ठपुत्राः, ये यूयं मे मानं मदीयं मतमनुगृह्णन्त आनुकूल्येन स्वीकुर्वन्तो मां विश्वामित्रं वीरवन्तं स्वधर्मशूरपुत्रयुक्तमकर्तं कृतवन्तस्ते वै तादृशा यूयं बहुविधपुत्रयुक्ता बहुविधानुकूलपुत्रयुक्ताश्च भविष्यथ।

द्वितीयां गाथामाह—

पुर एत्रा वीरवन्तो देवरातेन गाथिनाः।
सर्वे राध्याः स्थ पुत्रा एष वः सद्विवाचनम् ॥३॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

हे गाथिन (गायक) के पौत्रो! अपने आगे चलने वाले(√इ+तृच=एतृ) देवरात (देवताओं के द्वारा दत्त = शुनःशेप) के द्वारा तुम लोग वीरवान् (=वीर पुत्रवान्) बनकर, हे पुत्रो! तुम सभी प्रशंसनीय (पूजनीय) बनो, यही तुम लोगों को सत्य का निर्देशन [करेगा] ॥३॥

सा०—गाथिनशब्दो विश्वामित्रस्य पितरमाचष्टे। हे गाथिना, गाथिपौत्राः पुरः एत्रा=युष्माकं पुरतो गन्त्रा, मुख्येन देवरातेन सह यूयं सर्वे, वीरवन्तः श्रेष्ठ पुत्रयुक्ता राध्याः स्थ सर्वैः पुरुषैराराधनीयाः पूज्या भवथ। हे पुत्राः, मधुच्छन्दः प्रभृतयः, एष देवरातो वो युष्माकं सद्विवाचनं सन्मार्गस्य विशेषतोऽध्यापनं करिष्यतीति शेषः।

तृतीयां गाथामाह—

एष वः कुशिका वीरो देवरातस्तमन्वित
युष्मांश्च दायं म उपेता विद्यां यामु च विद्मसि ॥४॥

हे कुशिक वंश में उत्पन्न पुत्रो! तुम्हारा ही यह वीर देवरात (शुनःशेप) है। उसके पीछे पीछे चलो। मुझ से दाय (पैतृक संपत्ति) के रूप में वह तुमलोगों को तथा उस विद्या को भी प्राप्त करेगा जिसे हम जानते हैं ॥४॥

सा०—हे कुशिकाः=कुशिकनाम्नो मत्पितामहस्य सम्बन्धिनो मधुच्छन्दः-प्रभृतयः! एष देवरातो वो युष्माकं ज्येष्ठभ्रातेति शेषः। तं देवरातं यूयमन्वितानुगता भवत। मे मदीयं दायं धनं युष्मांश्चोपेता=प्राप्स्यति। चकाराद् देवरातं च। यामु च यामपि कांचिद्वेदशास्त्रादिरूपां विद्यां विद्मसि=वयं जानीमः, सापि युष्मानुपेता प्राप्स्यति।

विमर्श—कुशिक विश्वामित्र के पितामह थे इसी से विश्वामित्र को कौशिक कहा जाता है। गाथिन शब्द पौराणिककाल में गाधि बन गया जिससे विश्वामित्र गाधितनय हुए। उपेता=पावेगा। उप+√इ+लुट् लकार ('स्यतासी लृलुटोः' से तास्)।

चतुर्थीं गाथामाह—

ते सम्यञ्चो वैश्वामित्राः सर्वे साकं सरातयः।
देवराताय तस्थिरे धृत्यै श्रैष्ठ्याय गाथिनाः ॥ ५ ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

विश्वामित्र के पुत्रों ने अच्छी तरह, प्रसन्नतापूर्वक (सरातयः), साथ-साथ मिलकर, उन गाथिनों ने, देवरात (शुनःशेप) के लिए [उसका] नियंत्रण (धृति, अधीनता, control) तथा श्रेष्ठता स्वीकार की ॥ ५ ॥

सा०— हे वैश्वामित्राः=विश्वामित्रस्य मम पुत्राः, ये गाथिनाः=गाथिपौत्रास्ते यूयं सर्वेऽपि सम्यञ्चः=समीचीनबुद्धयो ये साकं देवरातेन सार्धं सरातयो=रातिर्धनसंपत्तिः तया युक्ताः सन्तो, देवरातायं=मदीयश्रेष्ठपुत्रस्य देवरातस्य, धृत्यै=धारणं युष्मत्पोषणं, श्रैष्ठ्याय=युष्माकं मध्ये श्रेष्ठत्वं च तस्थिरेऽङ्गीकृतवन्तः ।

विमर्श—इस गाथा को भी सायण ने विश्वामित्र की ही उक्ति मान ली है जिससे अर्थ की खींचातानी उन्हें करनी पड़ी है । 'तस्थिरे' का सम्बन्ध 'ते' से है जिसके विशेष्य हैं—वैश्वामित्राः, सरातयः, गाथिनाः । यह गाथि-पुत्रों की स्वीकृति के विषय मे उपाख्यानकार की उक्ति है ।

पञ्चमीं गाथामाह—

अधीयत देवरातो रिक्थयोरुभयोर्ऋषिः ।
जह्नूनां चाधिपत्ये दैवे वेदे च गाथिनाम् ॥६॥

देवरात (शुनःशेप) को दोनों उत्तराधिकारों (अजीगर्त और विश्वामित्र—सायण) के ऋषि के रूप में अधिकार मिला (या उसका स्मरण किया जाता है)—जह्नुओं के वंश में आधिपत्य (स्वामित्व) का और गाथिनों के वंश में दिव्य मंत्रों का [अधिकार उसे मिला] ॥ ६ ॥

सा०—'इक् स्मरणे' इति धातुः । अधीयत स्मृतिकारैर्महर्षिभिः स्मर्यते । कथमिति तदुच्यते । अयं देवरातो द्व्यामुष्यायणत्वादुभयोरजीगर्तविश्वामित्रयोः संबन्धिनी ये रिक्थे धने, तयोर्ऋषिर्द्रष्टा । तदुभयमर्हतीत्यर्थः । अजीगर्तस्य कूटस्थ ऋषिर्जह्नु संज्ञकस्तस्य वंशे जाताः सर्वे जह्नवस्तेषां चाधिपत्ये स्वामित्वे देवरातो योग्यः । तथा दैवे = देवसंबन्धिनि यागादिकर्मणि वेदे च मन्त्ररूपे समर्थः । गाथिनामस्मत्पितृवंशोत्पन्नानां च सर्वेषामाधिपत्ये योग्यः ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

विमर्श—शांख्यायन श्रौतसूत्र में पाठ यों है—'जह्नूनां चाधितस्थिरे दैवे वेदे च गाथिनाः।' इसका तो यही अर्थ होगा कि जह्नुओं के वंश में ही गाथिन लोग थे, वे दिव्य मंत्रों के विषय में बहुत निपुण थे। 'दैव' और 'वेद को सायण या वेबर की भाँति हम पृथक् रूप में नहीं लेते बल्कि विशेष्य-विशेषण के रूप में लेते हैं। गाथिन लोग जह्नुओं के मुख्य भेद हो जाते हैं। प्रस्तुत स्थल की संगति जरा कठिन हो जाती है। ऐतरेय ब्राह्मण का पाठ व्याख्यात्मक प्रतीत होता है। ऊपर के अनुसार यह स्पष्ट है कि जह्नु एक पूर्ण परिवार का सूचक है गाथिन उसके एक भाग का। अतः, जह्नूनामाधिपत्ये च गाथिनां दैवे वेदे च देवरातोऽधीयत=जह्नुवंश के स्वामित्व (onerlordship) तथा गाथिनों के दिव्य मंत्र या वेद के ऋषि के रूप देवरात रखा गया—यह अर्थ लेना ठीक है।

विश्वामित्र को राजपुत्र कहा गया है जिससे वे राजवंश के अधिकारी लगते हैं जबकि ऋग्वेद की परंपरा में (ऋ० ७।८३) वे सुदास के पुरोहित दिखाये गये हैं। साथ ही पंचविंश ब्राह्मण (११। १२।२) में भी उन्हें 'जाह्नवो राजा' कहा गया है। शुनःशेप विश्वामित्र के परिवार में पूर्णतः आ गया है, उसे अजीगर्त के वंश से अब कोई सम्बन्ध नहीं रहा। इसलिए फिर अजीगर्त का उत्तराधिकारी होना प्रमाद का सूचक है। वास्तव में जह्नु अजीगर्त के वंश में नहीं हुए थे, विश्वामित्र के वंश का सामान्य नाम जह्नु था।

यदि अजीगर्त के वंश को जह्नु भी कहें (जो ठीक नहीं) तो भी शुनःशेप का उस वंश में आधिपत्य अब कहाँ है? इसलिए, उसे दो उत्तराधिकारों की प्राप्ति हुई—जह्नु वंश में स्वामित्व और उसी के अवान्तर-भेद गाथिन-परिवार की परंपरा के अनुकूल वह दिव्य-मंत्र का भी अधिकारी बना। तदनुसार उसे ऋग्वेद के कुछ मंत्रों का ऋषि माना गया। 'अधीयत' √धा= धारण करना, से। सायण और मैक्सम्यूलर भी, अधि+√इक्=स्मरण करना, से मानते हैं। गाथिन शब्द से गाथिनानाम् के स्थान पर गाथिनाम् हो गया है (Haptology)।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उक्तमुपाख्यानमुपसंहरति—

तदेतत्परऋक्शतगाथं शौनःशेपमाख्यानम् ।

यह शुनःशेप का आख्यान एक सौ ऋचाओं तथा उसके बाद गाथाओं से बना है।

सा०—'कस्य नूनं', 'निधारय' इत्यन्ताः सप्ताधिकनवतिसंख्याका ऋचः 'त्वं नः स त्वम्' इत्यादिकास्तिस्रः ऋच एवमृचां शतम्। परःशब्दोऽधिकवाची। पूर्वोक्तादृक्शतात् परोऽधिका एकत्रिंशत्संख्याका 'यं न्विमम्' इत्याद्या गाथा यस्मिन्नाख्याने तदेतत्परऋक्शतगाथम्। शुनःशेपेन दृष्टाः सप्ताधिकनवति-(९७) संख्यायुक्ता ऋचो याः सन्त्यन्येन दृष्टास्तिस्र ऋचो याः सन्ति, ब्राह्मणे प्रोक्ता एकत्रिंशद्गाथाविशेषा ये सन्ति, तैः सर्वैरुपेतं 'हरिश्चन्द्रो ह वैधस' इत्यादिकं सर्वं शुनःशेपविषयमाख्यानम्।

विमर्श—शुनःशेपोपाख्यान समाप्त हो गया, उसकी रचना पर विचार हो रहा है। इसमें १०० ऋचाओं का तथा ३१ गाथाओं का प्रयोग हुआ है। इनकी संख्या निम्नांकित रूप से है—

खण्ड	ऋचायें	गाथायें
१	०	११
२	०	०
३	०	५
४	८८	०
५	१२	९
६	०	६
	१००	३१

तस्याख्यानस्य राजसूयक्रतौ विनियोगं दर्शयति—

तद्धोता राज्ञेऽभिषिक्ताय आचष्टे ।

[राजसूय-यज्ञ के अभिषेचनीय कर्म में] अभिषिक्त राजा को होता (ऋग्वेदी) इसे सुनाये।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सा०—राजसूयक्रतावभिषेचनीयाख्ये कर्मणि यदा राजाभिषिक्तो भवति तदानीं तस्मै राज्ञे तदाख्यानं होता कथयेत्।

तत्रेतिकर्तव्यं (Procedure) दर्शयति—

हिरण्यकशिपावासीन आचष्टे। हिरण्यकशिपावासीनः प्रतिगृणाति। यशो वै हिरण्यं, यशसैवैनं तत्समर्धयति।

सोने के सूत्रों से बने आसन पर बैठकर वह इसे सुनाता है [अध्वर्यु भी] सोने के सूत्रों से बने आसन पर ही बैठकर सुनता है। स्वर्ण ही यश है, इसलिए यश से ही राजा को वह समृद्ध करता है।

सा०—होता यदोपाख्यानं कथयति, तदानीं हिरण्यकशिपौ सुवर्णनिर्मितसूत्रैर्निष्पादिते कशिपौ स होतोपविशेत्। तदाख्यानमध्येऽध्वर्युश्च हिरण्यकशिपावासीनो वक्ष्यमाणं प्रतिगरं ब्रूयात्। हिरण्यस्य यशोहेतुत्वाद् यशस्त्वम्। तथा सत्येनं राजानं यशसैव समृद्धं करोति।

अध्वर्युणा प्रयोक्तव्यं प्रतिगरविशेषं दर्शयति—

'ओम्' इत्यृचः प्रतिगरः, एवं 'तथा' इति गाथायाः। ओमिति वै दैवं, तथेति मानुषम्। दैवेन चैवैनं तन्मानुषेण च पापादेनसः प्रमुञ्चति।

'ओम्' कहकर ऋचाओं का श्रवण (प्रतिगर=response), उसी प्रकार 'तथा' कहकर गाथा का। 'ओम्' दैव है और 'तथा' मानुष। इस प्रकार दैव और मानुष (प्रतिगरों) के द्वारा उसे (राजा को) अपकीर्ति तथा नरक- (पाप+एनः) से मुक्त कर देता है।

सा०—होत्रा प्रयुक्ताया एकैकस्या ऋचोऽन्तेऽध्वर्योरोमित्येतादृशः प्रतिगरो भवति।………। ओमित्येतच्छन्दोरूपं दैवं देवैरङ्गीकारार्थे प्रयुज्यते। तत्तथेत्यन्तं (तथेति) मानुषं, मनुष्या अङ्गीकारे तथेतिशब्दं प्रयुञ्जते। तत्तेन प्रतिगरेण दैवेन मानुषेण चाध्वर्युरेनं राजानं पापाद् दैहिकादपकीर्तिरूपादेनसो नरकहेतोश्च प्रमुञ्चति = प्रमुक्तं करोति।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

क्रत्वर्थत्वेनोपाख्यानम् विधाय क्रतुनिरपेक्षपुरुषार्थत्वेन विधत्ते—

तस्माद्यो राजा विजिती स्यादप्ययजमान आख्यापयेत एवैतच्छौनःशेपमाख्यानं, न हास्मिन्नल्पं चनैनः परिशिष्यते।

इससे जो राजा विजय प्राप्त करे, यज्ञ करने की [यदि इच्छा] न भी हो तो भी इस शुनःशेप की कथा कहलावे, उसमें थोड़ा भी पाप नहीं बचता है।

सा०—यस्मादुपाख्यानं पापप्रशमनहेतुः तस्मादयजमानोऽपि राजसूयक्रतुरहितोऽपि राजा विजिती यदि विजयोपेतः स्यात्तदानीमेतच्छौनःशेपमाख्यानमाख्यापयेत। तस्य राज्ञो यः कश्चिद् ब्राह्मण उपाख्यानं ब्रयात्। तथा सति तस्मिन्राजनि अल्पं च न किंचिदप्येनः पापं न ह वै परिशिष्यते। सर्वं पापं नश्यतीत्यर्थः।

आख्यानप्रयुक्तां दक्षिणां विधत्ते—

सहस्रमाख्यात्रे दद्याच्छतं प्रतिगरित्रे। एते चैवासने। श्वेतश्चाश्वतरीरथो होतुः।

कथा कहनेवाले को एक सहस्र (गायें) देनी चाहिए, श्रवण (प्रतिगर response) करने वाले (हुंकारी भरने वाले) को एक सौ गायें। ये दोनों आसन (स्वर्णासन) तथा खच्चरों से युक्त उजला रथ भी होता को देना चाहिए।

सा०—योऽयमाख्याता होता, तस्मै क्रत्वर्थदक्षिणामन्तरेण (besides) उपाख्यानप्रयुक्तां दक्षिणां गोसहस्ररूपां दद्यात्। प्रतिगरित्रेऽध्वर्यवे गोशतं दद्यात्। ये हिरण्यकशिपुरूपे द्वे आसने स्तः, एते अपि ताभ्यामेव दद्यात्। अश्वतरीभ्यां संकीर्णजातियुक्ताभ्यामधिकशक्तिभ्यां युक्तो रथोऽश्वतरीरथः। स च रजतेनालंकृतत्वाच्छ्वेतः सोऽपि तादृशो होतुर्देयः।

पूर्वमयज्ञसंयुक्तः कल्पो विजयिनो राज्ञोऽभिहितः। इदानीं पुत्रकामानामपि (सर्वेषामपि ?) विधत्ते—

पुत्रकामा हाप्याख्यापयेरँल्लभन्ते ह पुत्राँल्लभन्ते ह पुत्रान्॥ १८॥

पुत्र की कामना करनेवाले भी इसकी कथा कहलवायें तो पुत्र पाते हैं।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सा०—ये पुत्रकामाः सन्ति, ते ह प्रसिद्धमेतदुपाख्यानमाख्यापयेरन्ब्राह्मण-मुखात् शृणुयुरित्यर्थः । ते पुत्राँल्लभन्ते । अभ्यासोऽध्यायसमाप्त्यर्थः ॥

इति श्रीमत्सायणाचार्यविरचिते माधवीये वेदार्थप्रकाश ऐतरेयब्राह्मणभाष्ये त्रयस्त्रिंशाध्याये षष्ठः खण्डः ॥ ६ ॥ (१८) [१४१]

छात्राणामवलोक्य पाठनविधावध्यायमेतं मया
व्याख्या सायणमाधवस्य सरला सम्पादिता सश्रमम् ।
नव्यानामपि वैदुषीविमलिता स्थाने कृता टिप्पनी
तद् भूयाच्चिरमेव सज्जनमुदे व्याख्यानमाख्यानके ॥

—ऋषिः—

७५९ R.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अव्याकृत शब्दों की सूची

शब्द	विज्ञप्ति

अकर्त (६) अट् + √कृ + लुङ् (त) आत्मनेपद, च्लिलोप, गुण।

अज्ञत (२) अट् + √जन् + लुङ् (झ = अत), आत्म०, च्लिलोप। दे० वैदिकी प्रक्रिया—मन्त्रे घस-ह्वरणशवृदहा०।

अवदावदः (१) नञ् + √वद् + अच्। सि० कौ० नन्दिग्रहि० सूत्र पर वार्तिक—चरिचलिपतिवदीनां वा द्वित्वमच्याक् चाभ्यासस्येति वक्तव्यम्। काशिका ६।१।१२

अशनया परीतम् (३) अशन + क्यच् + अङ् + टाप् + तृतीया एक वचन (टा)। क्यच् का लोप। (अशनायया-सं० रूप)। Haplology से य लोप।

अश्वतरी रथः (६) अश्वतर + णिनि।

ईशे (४) सविता वै प्रसवानामीशे। √ईश् + त (आत्मनेपद – ए) त लोप।

उरुगायः (१।११) – उरु + √इण् (गा) + घञ्।

एनत् (१।८) – एतत् + ङि (लोप) – सुपां सुलुक्०

एनम् (५) अन्वादेश।

शब्द	विज्ञप्ति

जुहवांचकार (५) √हु + लिट् = √हु अभ्यासकार्य + आम् + √कृ + लिट्।

ज्ञपया (५) अट् (लोप), √ज्ञा + णिच् (पुक्), ह्रस्व, लङ् (मध्यमपुरुष एक०) सिप् (इलोप – इतश्च)। बाहुलक दीर्घ।

तृचम् (४) त्रि + ऋच = त्र्यृच > तृच। दे० निरुक्त (२।१)।

निष्क्रीणै (३) निस् + √क्री (आत्म०) उत्तमपुरुष एक वचन (लोट्)।

निःशानः (४) निस् + √श्यो + क्त = निश्यानः। बाहुलक य् का लोप।

नृषद् (३) नृ + √सद् + क्विप् = नरेषु स्थीयमानः।

पद्यन्ते, पद्यन्ताम् (२) √पद् = √पत् = गिरना (आत्म०)।

प्रजा स्यात् (५) प्रजा का प्रयोग एक-वचन में। संस्कृत में नित्य बहुवचन।

फलग्रहिः (३) फल + √ग्रह् + इन्। संस्कृत में निपातन से फलेग्रहिः।

वि पाशो सुमुचे (४) पाशः विमुमुचे। उपसर्ग और धातु के बीच व्यवधान।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

शब्द	विज्ञप्ति
व्योमन् (१)	व्योमन् + ङि (लोप)। दे० वैदिकी प्रक्रिया—सुपां सुलुक्०।
शुश्रुम (३)	√श्रु + लिट् (उत्तम पुरुष बहु०)। संस्कृत में निषिद्ध। दे० मूलग्रन्थ।
श्रृणोतन (५)	√श्रु + लोट् मध्यम-पुरुष बहुवचन (तङ् के स्थान में तनप्, श्नु विकरण का गुण)।
श्रेमाणम् (३)	√श्रि + मनिन्=श्रेमन् द्वितीया एक०। सुन्दरता, तेज।
संनाहः (२)	सम् + √णह् + घञ् = संनाहः। उकञ् – सान्नाहुकः।
संजिहानः (३)	सम्+√हा+शानच्।
संज्ञानानेषु (५)	सम्+√ज्ञा+शानच् सप्तमी बहुवचन।
सुशेवः (१)	सु + √शेव् + अच्।
स्थन (५)	√स्था+लोट् मध्य० बहु० (तङ् के स्थान में थन—तप्तनप्-नथनाश्च)।

वाल्मीकि विद्यापीठ

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सहायक ग्रन्थावली

(Bibliography)

१ ऐतरेयब्राह्मणम्—सायणभाष्यम् (आनन्दाश्रम पूना)।
२ हरिश्चन्द्रोपाख्यानम् (पं० महादेवशास्त्री, काशी)।
३ वैदिक साहित्य और संस्कृति (पं० बलदेव उपाध्याय, काशी)।
४ अष्टाध्यायी—पाणिनिः।
५ शब्दकल्पद्रुमः—(चौखम्बा, काशी)।
६ Vedic Mythology—Macdonell.
७ A History of Indian Literature—Winternitz (Eng. Trans.).
८ A History of Sanskrit Literature—Macdonell.
९ Vedic Index—Macdonell and Keith.
१० Aitareya Brahmana vol. I-II—Martin Haug.
११ Rigveda Brahmanas—Keith.
१२ ऐतरेय ब्राह्मण (हिन्दी अनुवाद)—गंगाप्रसाद उपाध्याय, प्रयाग।
१३ हिन्दी-निरुक्त—उमाशंकर शर्मा 'ऋषि', काशी।
१४ ऐतरेयालोचनम्—पं० सत्यव्रत सामश्रमी, कलकत्ता।
१५ यज्ञतत्त्वप्रकाश—पं० चिन्नस्वामी शास्त्री, कलकत्ता।
१६ ऋग्वेदसंहिता—सायणभाष्यम्, पूना।
१७ Sanskrit Grammar—W. D. Whitney.
१८ Vedic Grammar—Macdonell.
१९ वैदिकी प्रक्रिया—भट्टोजिदीक्षितः।
२० काशिका—वामनजयादित्यौ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

शुद्धि-पत्र

('हरिश्चन्द्रोपाख्यान' के मूलभाग की छपाई मेरे अनजाने में हो जाने के कारण बहुत सी अशुद्धियाँ रह गयी हैं। जिनमें कुछ अक्षम्य अशुद्धियों का शुद्धिपत्र दिया जा रहा है। –संपादक।)

पृष्ठ	पङ्क्ति	अशुद्ध	शुद्ध
४	१७	आदुः	आहुः
९	१७	स्ताल्लिङ्गा	स्तल्लिङ्गा
११	५	विजयो	विषयो
१३	३	किं किमुता	किमुता
२२	१०	आत्मस्भरि	आत्मम्भरि
२३	१०	वर्त्ताणिज्या	वाणिज्या
२५	१४	इन अन्य वस्तुओं	इन वस्तुओं
२८	११	इन्द	हन्त
२९	३	ब्रह्म अयास्य	ब्रह्मा, अयास्य
”	५	तं	स तं
३०	१	ब्राह्मघ्नो	बाह्यविघ्नों
”	१०	काल	काम
३१	२	इसकी	इसका वध
३६	३	य	स
३७	४	द्रोकणलश	द्रोणकलश
४२	१८	शुःनशेपो	शुनःशेपो
४६	८	तोरवारी	तोखारी
४९	२२	पौराराणिक	पौराणिक
५१	२६	Haptology	Haplology
५३	४-५		मूल ब्राह्मण है
५५	८	नव्यानमपि	नव्यानामपि

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

HARISHCHANDRO PAKHYANAM

9

EDITED

BY - UMA SHANKAR

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

DATE DUE

०५४।३।१८

०५६।१०।१३

०५६।१२।२८

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पीठ पुस्तकालयः

294.5921
SHA

7551

महेन्द्र संस्कृत विश्वविद्यालय
वाल्मीकि विद्यापीठ
पुस्तकालय

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu